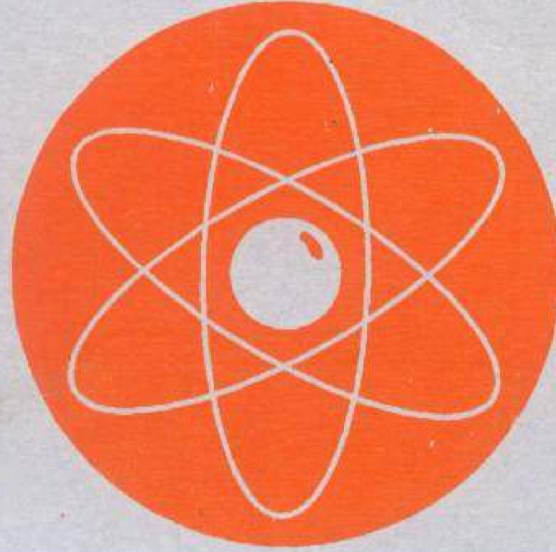
श्रीमान् भास्कराचार्य प्रणीत



बीजोपनय





अनुवादक एवं विज्ञान भाष्यकार

डॉ० गोपाल शास्त्री कारखेडकर

खगोल विज्ञान ग्रन्थमाला प्रकाशन

स्ववासनाभाष्यसहित भास्कराचार्यप्रणीत

बीजोपनय

भाषाटीका एवं विज्ञानभाष्य
डॉ. गोपाल शास्त्री कारखेडकर
महानिदेशक
ब्रह्मगुप्त प्राच्य ज्योतिष विश्लेषण वेधशाला संस्थान

नियन्त्रक
ब्रह्मगुप्त प्राच्य ज्योतिष विश्लेषण वेधशाला संस्थान, वाराणसी
सीके ४८/१०४, हड़हा, वाराणसी।

रचनाकार एवं वासनाभाष्यकार :

श्रीमान् भास्कराचार्य

भाषानुवाद एवं विज्ञानभाष्यकारः

डॉ. गोपालशास्त्री कारखेडकर

मुद्रक एवं अक्षर संयोजकः

आशीर्वाद प्रिन्टिंग् वर्क्स, नीलकन्ठ, वाराणसी

साह कम्प्यूटर्स, बाँसफाटक, वाराणसी

प्रथम संस्करण, २००४ ई.

साधुवाद

अर्थ प्रधान युग में रचनात्मक लेखनकार्य का सार्वजनिक प्रकाशन तब चेतना शून्य हो जाता है जब आर्थिक विपन्नता समसामयिक कारणों से अवरोध उत्पन्न करती है। प्रस्तुत ग्रन्थ ईस्वीसन २००१ में कम्प्यूटरी कृत किया जा चुका था, परन्तु तात्कालिक, सार्वजनिक परिस्थितियों के कारण इसका प्रकाशन कार्य अवरुद्ध हो गया था। ऐसे में वाराणसी के विप्रश्रेष्ठ सहृदयी उदारचेता श्री भूषण महादेव मिश्र जी ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु पूर्ण आर्थिक सहयोग देकर भारतीय वैज्ञानिक वाङ्मय के महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'बीजोपनय' के प्रकाशन में महनीय योगदान किया। इस महनीय योगदान के लिए मैं सदा उनका ऋणी रहते हुए ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वो उनको तथा उनके कुटुम्ब को शतायु सहसुखी एवं समृद्ध जीवन प्रदत्त करे।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन कार्य में साह कम्प्यूटर्स के स्वामी पीयूष ललित मोहन साह एवं आशीर्वाद प्रिन्टिंग् वर्क्स के स्वामी संदीप कन्हैयालाल उपाध्याय को विशेष धन्यवाद देने के साथ ही उनके सुखी जीवन की कामना करता हूँ।

अन्त में — इस ग्रन्थ को सौन्दर्यपूर्ण स्थिति में कम्प्यूटरीकृत करने के श्रम साध्य कार्य में पूर्णमनोयोग से योगदान प्रदान करने में मेरे विद्वान मित्र पंडित श्री त्रिलोचन प्रसाद शर्मा ने निस्वार्थ भाव से जो योगदान दिया है उसका मैं आसृष्टि ऋणी रहूँगा।

डॉ० गोपाल शास्त्री कारखेडकर
३ मई २००४ ईस्वी

प्रस्तावना

॥ ॐ विश्वमाभाऽसिरोचनम् ॥

भारतीय ज्योतिष विज्ञान की त्रिस्कन्धीयविषयवस्तु एवं उसके ऐतिहासिक विस्तार के सन्दर्भ में विभिन्न प्रकार के मुद्रित सिद्धान्तज्योतिष एवं करणग्रन्थों की भूमिकाओं में विद्वत्वर्ग ने विस्तृत चर्चाएँ की हैं। अतः पुनः इस पर विचारों का आलेखन करना पिसे हुए गेहूँ को बार-बार पीसते रहने का निरर्थक प्रयास मात्र ही होगा। सृष्टि के आरम्भ से सृष्ट्यन्त तक की ग्रह गणना का विमर्ष जिस ग्रन्थ में हो वह सिद्धान्त है, ऐसी लक्षणात्मक परिभाषा इस विषय के विद्वान लोग करते हैं। परन्तु मेरे विचार इससे पूर्णतः भिन्न हैं।

ब्रह्माण्ड में हिरण्यगर्भोत्पत्ति के पूर्व सदसदादि कुछ नहीं था जैसा कि 'तैत्तरीय ब्राह्मण' में "नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं नासीद्रजोनोव्योमापरोयत्" इत्यादि प्रकार से वर्णन प्राप्त होता है। परन्तु कुछ नहीं था के उपरान्त प्रथमतः किस तत्व की उत्पत्ति हुई होगी इसको बता पाना अत्यन्त जटिल कार्य हैं। यह विविध प्रकार की सृष्टि किससे उत्पन्न हुई, क्यों उत्पन्न हुई, कैसे उत्पन्न हुई, यह भी बता पाना असम्भव-सा हैं, आधुनिक विज्ञान की विभिन्न शाखाएँ भी इस तथ्य पर सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सकतीं है और न ही सृष्ट्यन्त तक दे पाएँगी। क्योंकि सृष्ट्युत्पत्ति के मूल में स्थित कार्यकारण भाव और जन्यजनकताभाव को पूर्णतः समझपाने के लिए किसी भी विज्ञान शास्त्र निर्माता को अपने व्यष्टि अस्तित्व को समष्टि ब्रह्माण्ड के अस्तित्व में अवश्यतः परिणत करना होगा, जो कि असम्भव होने के साथ-साथ अकल्पनीय भी है।

वर्तमान में आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा जो सृष्टि एवं ब्रह्माण्ड के स्वल्प रहस्यों की खोज की भी गई है वह वास्तव में सृष्ट्युत्पत्ति का मौलिक कारण न हो कर ब्रह्माण्ड में सार्वत्रिक साम्य रूप में स्थित अतिसूक्ष्मतमपरादृश्य तत्व हैं। जिनको कुछ सीमा तक सूक्ष्म यन्त्रों की सहायता से देखा जा सकता है तथापि हिरण्यगर्भोत्पत्ति से लेकर उसके अस्तित्व समाप्ति तक के मध्य में विसर्जितोत्पन्न सृष्टि[१] के विकास क्रम का विवेचन अत्यन्त ठोस रूप में भारतीय वैदिकवाङ्मय में किया गया है जो कि मन्त्रों के रूप में हैं।

इस वैदिक वाङ्मय का अविच्छिन्न अङ्ग ज्योतिष है जिसकी तीन शाखाएँ तथा उन्तीस उपशाखाएँ हैं। शाखा उपशाखा से संसक्त वृक्ष की आठ प्रधान जड़ें हैं। जिनमें ऋग्यजु-स्सामाथर्ववेद, उपनिषद, पुराण, आगम, तथा तन्त्र सम्मिलित हैं। इस ज्योतिष रूपीवृक्ष की सर्वसम्पन्न बृहद्शाखा है सिद्धान्त ज्योतिष। इसमें ब्रह्माण्ड की स्थिति, सृष्ट्युत्पत्ति, नक्षत्रों की संस्थिती, कालगणना, ग्रहगति विषयक सिद्धान्त और इन सबका प्रेक्षण करने हेतु यन्त्रोपकरण के विषय और भूस्थितप्राणियों के साथ इनके सापेक्ष सम्बन्धों की विवेचना का कार्यकारण भाव सहित संहिता (विधिविधान) बद्ध प्रतिपादन विस्तार पूर्वक किया गया है। उपर्युक्त के प्रतिपादन में उच्च गणित सम्यक्तया प्रयुज्य होता है। भास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि मध्यमाधिकार में सिद्धान्त का लक्षण इस प्रकार बताया है। यथा,

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलनामानप्रभेदक्रमात् ।
चारश्चद्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः॥
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्चकथनं यन्त्रादियत्रोच्यते।
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्रगणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः॥

उपर्युक्त विवेचनाधार पर यह कहा जा सकता है कि जिस शास्त्र में ब्रह्माण्डीय

---

१. **कल्पक्षये पुनस्तानीं कल्पादौ विसृजाम्यहम्।** (भगवद्गीता)

ज्योतिपिण्डों के सञ्चरण संक्रमणादि कि स्थितियों का प्रतिपादन उच्च गणित एवं यान्त्रिक शाखा की सहायता से किया गया हो वह सिद्धान्तज्योतिष शास्त्र है। इस सिद्धान्तज्योतिष के नियम सिद्धान्तों के आधार पर किसी इष्टशकाब्द के ग्रहीय ध्रुवाङ्कों क्षेपकाङ्कों का निर्धारण करते हुए क्रियात्मक ग्रह गणित की व्यवस्था जिस ग्रन्थ में होती है उसे करणग्रन्थ कहते हैं। इन करणग्रन्थों के आधार पर विभिन्न प्रकार के पञ्चाङ्गों का निर्माण होता है।

चूँकि उपर्युक्त ज्योतिष की लोकोपयोगिता बनी रहे. एतदर्थ लोकव्यवहारोपयुक्त धर्मानुष्ठान, षोडष संस्कार, वास्तुकर्म, कृषिकर्म, आयुर्वेदादि कृत्यों के सम्पादन में प्रयुक्त मुहूर्तादि की व्यवस्था, पञ्चाङ्ग निर्मित कर की जाती है। पञ्चाङ्ग में तिथि, नक्षत्र, योग, करण के समाप्तिकालादि एवं अन्यान्य विषवस्तुओं के साथ-साथ प्राकृतिक घटनाक्रम तथा व्रत-पर्वादि का भी उल्लेख किया जाता है।

इनमें मूलतः तिथि-नक्षत्रादि के समाप्ति काल का सम्बन्ध परिस्फुट चन्द्र तथा सूर्य से है और ये दोनों ही ग्रह कालनियामक हैं। इनके स्पष्टीकरण की प्रकृया इस प्रकार है। प्रथमतः अहर्गण लाकर इसको सूर्य चन्द्र की मध्यम गतियों से गुणाकर और ध्रुवाङ्कादि जोड़कर राश्यादि मध्यम सूर्य चन्द्रानयन कर लेते हैं। इस सूर्य चन्द्र में स्थिरत्वेन अब्दबीज संस्कार तथा भुजान्तर, उदयान्तरादि का संस्कार करते हैं। तदुपरान्त इसमें मन्दफल का संस्कार कर इसे स्पष्ट करते हैं। इस प्रकार से स्पष्टीकृत सूर्य चन्द्र के अन्तरांश से तिथि, योगांश से योग, अन्तरांशार्ध से करण तथा केवल स्पष्टचन्द्र के अंशात्मक प्रमाण से नक्षत्र का समाप्ति कालानयन कर पञ्चाङ्ग में लिपिबद्ध किया जाता है। उक्त समस्त प्रकृया में स्पष्ट चन्द्र ही मूल आधार है। परन्तु उक्त तिथ्यादि समाप्तिकाल पूर्णतः शुद्ध तभी होगा जब स्पष्ट चन्द्र के राश्यादि मान में पारमार्थिक परिस्फुटता होगी। यह परिस्फुटता मध्यम चन्द्र में मन्दफल का संस्कार करने मात्र से ही नही आती।

मन्दफल संस्कृत राश्यादि प्रमाण तुल्य चन्द्रस्थिति वास्तविक परीक्षा काल में चन्द्रबिम्बगत कदम्बवलय और क्रान्तिवृत्त सम्पात पर दृश्य नहीं होती। प्रेक्षण काल में प्राप्त कदम्बवलयस्थ चन्द्रस्थान और स्वकक्षास्थित चन्द्र का राश्यादि प्रमाण पूर्वकथितप्रकारानीत राश्यादि चन्द्र प्रमाण से कुछ अधिक या कम प्राप्त होता है। चन्द्रमा की इस विसङ्गति को दूर करने के लिए सर्वप्रथम शक ८५४ ईस्वी सन् ९३२ में "मुञ्जाल" ने अपने करण ग्रन्थ लघुमानस में एक विशेष सिद्धान्त प्रतिपादित किया जो इस प्रकार है।

इन्दूच्चोनार्ककोटिघ्नोगत्यंशा विभवाविधोः।
गुणोव्यर्केन्दुदोः कोट्यो रूपपञ्चाप्तयोक्रमात्॥
फलेशशाङ्कतद्गत्योर्लिप्ताद्ये स्वर्णयोर्वधे।
ऋणं चन्द्रे धनं भुक्तौ स्वर्णसाम्यवधेऽन्यथा॥

उपर्युक्त श्लोक की सैद्धान्तिक और सोपपत्तिक व्याख्या एवं विश्लेषण नहीं दिया गया है और साथ ही श्लोकोक्त प्रक्रिया मन्दस्पष्ट चन्द्र की विसङ्गति को दूर करने में पूर्णतः समर्थ भी नहीं है। इसके द्वारा संस्कृत चन्द्र में भी पर्याप्त विसङ्गति अवशिष्ट रह जाती है।

मुञ्जाल के पूर्व बीजसंस्कार की व्यवस्था अपौरुषेय ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त के अन्त में बीजोपनयाध्याय के रूप में वर्णित है, जिसे कतिपय तन्द्रालवीबीजोपनयप्रयासभीत विद्वान अप्रामाणिक मानते हुए कहते हैं कि यह अध्याय किसी अन्य के द्वारा सूर्यसिद्धान्त के अन्त में प्रक्षिप्त कर दिया गया है। इसका खण्डन भास्कराचार्य ने अपने इसी बीजोपनयन में "मयाय बीजोपनयेयदन्ते सूर्योक्तमाद्यं परमं रहस्यम्" इस प्रकार की श्लोक व्याख्या द्वारा किया है।

परन्तु सूर्यसिद्धान्तोक्त बीज संस्कार जो कि बीजोपनयाध्याय में कहा गया है वह स्थिर तथा अब्दबीज संस्कार है जिसका उल्लेख प्रत्येक सिद्धान्त ग्रन्थों के मध्यमाधिकार में किया गया है। सिद्धान्त शिरोमणि के मध्यमाधिकार में भी "खाभ्रखार्कैर्हता कल्पयातासमाः" इत्यादि प्रकार से स्थिर अब्दबीज संस्कार की क्रिया विधि दी गई है। यह बीज संस्कार ग्रहों में किया जाने वाला कालान्तरजन्य संस्कार मात्र है, ग्रहों के दृक्प्रत्ययार्थ इसका प्रयोग नहीं करते हैं। इस बीज संस्कार से चन्द्र की विसङ्गति को दूर नहीं किया जा सकता। भास्कराचार्य ने इसी बीजोपनयन में ही "यद्यपिपूर्वमपीदं सङ्क्षेपादुक्तमागमोक्तदिशा। नैतावतैवकश्चितदृक्करणैक्याय कल्पते गणकाः" इत्यादि श्लोक के द्वारा उक्त आशय को स्पष्ट किया है। मन्दफल संस्कृत चन्द्र में विसङ्गति तो होती ही है परंतु इसका स्पष्ट कारण और यथार्थ स्वरूप के साथ वेधोपलब्धिसापेक्ष्य गणितीय व्याख्या भास्कर पूर्ववर्ति आचार्यों ने स्पष्टशः रूप में नहीं दी है।

प्रथमतः शक १०७३ इस्वीसन् ११५१ में मुञ्जाल के २९७ वर्ष के उपरान्त श्रीमान भास्कराचार्य ने चन्द्रविसङ्गति का स्पष्ट कारण देते हुए उसकी सैद्धान्तिक एवं विस्तृत गणितीय व्याख्या प्रस्तुत की। उन्होंने चन्द्र विसङ्गति का महत्त्वपूर्ण कारण सूर्य का गुरुत्वाकर्षण प्रभाव का होना और इसके विपर्यय में पदार्थ की आन्तरिक उदासीनता का होना बताया है जो इस प्रकार है।

पातारवेस्तामसकीलकाख्या तेषां समाकर्षणतः शशाङ्कः।
तत्तुङ्गशक्तिश्च निजःस्वभावं विहाय नित्यं विषमत्वमेति॥

तथा

बीजं हि नैजाङ्कुरशक्तियुक्तं स्वशक्तिमात्रेण यथा कुसूले।
तथा स्थिरं तिष्ठति निर्विकारं कदाचिदेतिप्रपुलं विकारम्॥

सूर्य के सम्यक् आकर्षण के कारण चन्द्र और उसकी उच्च शक्ति की स्वाभाविक गति में विषमता उत्पन्न होती हैं जिस प्रकार वानस्पतिक बीज के अन्दर अङ्कुरण की शक्ति निर्विकार भाव से समाहित रहती है परन्तु जबतक बाह्य प्राकृतिक बल के साथ समयशक्ति का प्रभाव नहीं पड़ता तबतक वह अङ्कुरित नहीं होता ठीक इसी प्रकार चन्द्रविसङ्गति का कारक यह चर बीज भी बाह्य बल के कारण उत्पन्न होता है।

चन्द्रमा में किए जाने वाले दो आधुनिक संस्कार जो कि च्युति (Evection) एवं तिथि या पाक्षिक (Veriation) संस्कार के नाम से जाने जाते हैं वे भास्करीय प्रथम तथा द्वितीय चरबीज फल के सिद्धान्तानुरूप ही है। बल्कि यह कहा जाए कि भास्करीय सिद्धान्तों का ही वैदेशिक एवं अंग्रेजी रूपान्तरण मात्र है तो कोई भी आपत्ति नहीं होगी। वास्तव में आधुनिक खगोलविज्ञान में इन दोनों संस्कारों का प्रतिपादन कणगतिशास्त्र (Dynamics of a Particle) में वर्णित व्यवधान बल (Disturbing Force) सिद्धान्त द्वारा किया जाता है जो कि गलितकुष्ठवत् वैज्ञानिकभाषा के कतिपय भौतिकशास्त्रीय सिद्धान्तों का विपरिणाम मात्र है। दोनों के सैद्धान्तिक विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भास्करीय चरबीज फलद्वय तथा आधुनिक संस्कारद्वय एक ही प्रकार की क्रियाविधि का परस्पर दो भिन्न भाषाओं में किया गया प्रतिपादन मात्र हैं। दोनों के गन्तव्य मार्ग भिन्न-भिन्न होने पर भी गन्तव्यबिन्दु और दिशा एक ही है। भास्करीय प्रथम चर बीज संस्कार आधुनिक च्युति संस्कार तथा भास्करीय द्वितीय चरबीज संस्कार आधुनिक तिथि संस्कार है।

उक्त चन्द्र विसङ्गति का भास्करीय परम मान ११२ कला तथा आधुनिक प्रमाण ११०.२०′ कला है दोनों के मध्य अन्तर मात्र १.८′ कला प्राप्त होता है। जो कि स्वल्पान्तर वशात नगण्य

है तथा ९०० वर्षों के अन्तराल में मन्दफल में पड़ने वाले ऋणात्मक कालान्तरजन्य अन्तर का परिणाम मात्र है। भास्करीय प्रथम चरबीज ७८′ कला है जिसका आधुनिक प्रमाण ७४.४५′ कला है, दोनों के मध्य ३.५ कला का अन्तर प्राप्त होता है इसी प्रकार भास्करीय द्वितीय चरबीज फल ३४ कला है जिसका आधुनिक प्रमाण ३५.७५ कला है दोनों का अन्तर १.७५ कला प्राप्त होता है और इन दोनों अन्तरों का अन्तर १.८ कला आता है। इन सारे तथ्यों की विश्लेषणात्मक व्याख्या मैने परिशिष्ट में दी है।

वासनाभाष्य सहबीजोपनय को प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी द्वारा इस्वीय सन १९२६ में प्रकाशित किया गया था जिसपर कलकत्ता निवासी एकेन्द्रनाथ घोष, (प्रोफ़ेसर, बायोलॉजी, मेडिकल कॉलेज) की अंग्रेजी टीका भी मुद्रित है। वर्तमान में यह मुद्रित पुस्तक अनुपलब्ध है तथा इसकी मूल पाण्डुलिपि (भास्करकृत) तो सर्वथा दुष्प्राप्य हैं यह पुस्तक चन्द्रमा के गति वैषम्यातिरेक के साथ-साथ अन्य चन्द्रसिद्धान्तों को भली-भाँति समझने में तथा दृगगणितैक्यकृत पञ्चाङ्गनिर्माण में अत्यन्त उपयोगी और महत्त्वपूर्ण हैं अद्यावधि इस लघुग्रन्थ पर वासनाभाष्यातिरिक्त कोई अन्य भाष्य, उपपत्ती आदि किसी अन्य विद्वान के द्वारा नहीं लिखी गई है। यह बड़े खेद का विषय है कि प्राच्य भारतीय खगोलविज्ञान (सिद्धान्त ज्योतिष) के महत्त्वपूर्ण भाग "भास्करीय बीजोपनय" पर किसी भी मनीषी विद्वान ने विश्लेषणात्मक प्रतिपादन करने और उसको उपयोग में लाने का प्रयास तक नहीं किया।

ब्रह्मगुप्त प्राच्यज्योतिष विश्लेषण वेधशाला संस्थान् द्वारा सन् १९९५ ई. में, महद् प्रयास से वाराणसी स्थित गोयनका संस्कृत पुस्तकालय से मुद्रित पुस्तक की छायाप्रति प्राप्त कर, उसपर गवेशणात्मक कार्य किए जाने का प्रस्ताव मेरे सामने रखा। प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार करते हुए इस लघु ग्रन्थ पर विज्ञान भाष्य तथा हिन्दी अनुवाद लेखन का कार्य ईसवीय सन् १९९७ के चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से मैंने प्रारम्भ कर दिया। इस कार्य में ब्रह्मगुप्त वेधशाला संस्थान तथा मेरे पूज्य गुरुदेव डॉ. नागेन्द्र पाण्डेय (रीडर ज्योतिष विभाग सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय तथा अध्यक्ष उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान) जी का महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा हैं जहाँ कहीं भी संस्कृत भाषाविज्ञान से सम्बन्धित तथा पारिभाषिक शब्दावली से सम्बन्धित सहयोग की आवश्यकता पड़ी पूज्य गुरुदेव ने उदारचित्त से सम्बद्ध विषयों का सम्यक् ज्ञान कराते हुए ग्रन्थ के शुद्ध सम्पादन में सहयोग स्वरूप अतुलनीय आशिर्वाद प्रदान किया है। इसके लिए उनका सादर आभारव्यक्त करते हुए अन्य विद्वज्जनों एवं वैज्ञानिकों से निवेदन है कि इस ग्रन्थ के अनुवाद तथा विज्ञानभाष्य के लेखन, प्रतिपादन, मुद्रण में यदि कहीं त्रुटि रह गई हो तो उसे क्षमा करेंगे।

इस ग्रन्थ के श्लोकों तथ वासनाभाष्य को स्वल्पसंशोधन के साथ यथावत् मुद्रित किया गया है। अत्यन्त परिश्रम पूर्वक विज्ञानभाष्य को निर्मित करने में मुझे तीन वर्ष का समय लगा है। आशा रखता हूँ यह कार्य विद्वज्जनों को सन्तोष सह मोद को प्रदान करने में समर्थ हो सकेगा और अन्त में,

तुष्यन्तु सुजनाबुध्वा विशेषान् मदुदीरितान्।
अबोधेन हसन्तो मां तोष्यमेष्यन्ति दुर्जनाः॥

विदुषामनुचरः,

दि. ६ अगस्त २००० ई.
श्रावण, शुक्ल ७, शक १९२२

डॉ. गोपालशास्त्री कारखेडकर
महानिदेशक
ब्र. प्रा. ज्यो. वि. वेधशाला संस्थान,
वाराणसी।

जीवन वृत्तान्त

भारतीय खगोल विज्ञान, गणित के जनक और श्रेष्ठ अभियन्ता

आचार्य भास्कर

भारतीय सिद्धान्त ज्योतिष के आधार स्तम्भ

सिद्धान्त ज्योतिष के आधार स्तम्भ I को वगैर समझे भास्कराचार्य को समझना उतना ही दुरूह है जितना कि मौलिक तत्वों के वगैर पदार्थ संरचना को समझना।

भारतीय खगोल विज्ञान जिसे सिद्धान्त ज्योतिष कहा जाता है तथा जिसका अंग्रेजी अनुवाद (Astronomy) है। इस क्षेत्र में सर्वप्रथम शक ३९८ सन् ४७६ ईसवी में आज से १५२४ वर्ष पूर्व श्रीमान् आर्यभट्ट द्वारा रचित ग्रन्थ "आर्यभटीयम्", इसके उपरान्त वराहमिहिर कृत "पञ्चसिद्धान्तिका", "बृहत्संहिता" तथा इसके कुछ वर्षों के उपरान्त आचार्य ब्रह्मगुप्त रचित "ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त", तत्पश्चात् लल्लाचार्य रचित "शिष्यधीवृद्धिदतन्त्रम्" ग्रन्थ के माध्यम से खगोलीय घटनाक्रमों का आकलन मापन एवं आकाशीय पिण्डों की रचना और गति के सम्बन्ध में सुदृढ़ जानकारी प्राप्त होती है। इन वैज्ञानिकों द्वारा भारतीय खगोल विज्ञान की प्रथमतः आधारशिला रखी गयी। सिद्धान्त ग्रन्थों का लेखन एवं खगोलीय नूतन आविष्कारों का संज्ञान कराये जाने की प्रक्रिया भी आज से १५२४ वर्ष पूर्व आर्यभट्ट द्वारा शुरू की गयी।

भास्कराचार्य (१११४ ई.)

शक ५६० सन् ६३८ ई. के लगभग आचार्य लल्ल के शिष्यधीवृद्धिदतन्त्रम् नामक सिद्धान्त ज्योतिष ग्रन्थ रचना के ५१२ वर्ष बाद सिद्धान्त शिरोमणि नामक खगोलीय ग्रन्थ की रचना भास्कराचार्य द्वारा की गयी। इस महान वैज्ञानिक का जन्म शक १०३६ सन् १११४ ई. में सह्य पर्वत के समीप विज्जड़विड़ ग्राम के शाण्डिल्य गोत्रीय ब्राह्मण श्री माहेश्वराचार्य के यहाँ हुआ था। आप ही भास्कराचार्य के पिता एवं गुरु भी थे।

विज्जड़विड़ गाँव वर्तमान बिजापुर नाम से प्रसिद्ध है। खान देश के चालीस गाँव से १० मील नैर्ऋत्य (दक्षिण-पश्चिम) दिशा में पाटण नामक ग्राम था। उसी ग्राम के भवानी मन्दिर में भास्कराचार्य के पौत्र चंगदेव द्वारा स्थापित, लिखित शिलालेख प्राप्त होता है। इस लेख के बारे में स्व. डॉ. भाऊदाजी ने Jour. R. As. So. N.S. Vol. 1, P. 414 f.f. तथा Epigraphia Indica Vol. 1, P. 340 f.f. में विस्तृत रूप से उल्लेख किया है जिसके आधार पर भास्कराचार्य की जन्मस्थली (विज्जड़विड़) पाटण ग्राम ही सिद्ध होती है।

भास्कराचार्य एवं उनके उत्तरवर्तीय व पूर्ववर्तीय वंशजों के द्वारा रचित सिद्धान्त ग्रन्थों के अध्ययन अध्यापन हेतु उनके पौत्र ने पाटण गाँव में एक मठ स्थापित किया था जिसका निर्माण काल सन् १२१० से १२३७ के मध्य प्रामाणिक रूप से शिलालेखानुसार ज्ञात होता है।

वर्तमान में मठ अपने मूल अस्तित्व में नहीं है परन्तु इसके भग्नावशेष मात्र ही प्राप्त होते हैं।

दौलताबाद जो कि पूर्व काल में देवगिरी के नाम से जाना जाता था। इस देवगिरी के पास ही पाटण नामक गाँव सह्याद्रि पर्वत के समीप में था। यहीं उनकी जन्मस्थली थी जिसका वर्णन अपने सिद्धान्त शिरोमणि ग्रन्थ के गोलाध्याय के अन्तिम श्लोक संख्या ६१ में भास्कराचार्य ने किया है–

रसगुणपूर्णमही (१०३६) समशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः
सरगुण (३६) वर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणिरचितः॥
आसीत् सह्यकुलाचलाश्रितपुरे त्रैविद्यविद्वज्जने
नानासज्जनधाम्नि विज्जड़विड़े शाण्डिल्यगोत्रोद्विजः।
श्रौतस्मार्तविचारसारचतुरो निःशेषविद्यानिधिः
साधूनामवधिर्महेश्वरकृती दैवज्ञचूडामणिः॥

इसी प्रकार "बीजगणितम्" नामक ग्रन्थ में भी निम्नवत् विवरण प्राप्त होता है जिससे इनके पिता व गुरु श्रीमाहेश्वराचार्य ही थे, यह प्रमाणित होता है–

आसीन्महेश्वर इतिप्रथितः पृथिव्यामाचार्यवर्यपदवीं विदुषां प्रपन्नः।
लब्धावबोधकलिकां तत एव चक्रे जज्जेन बीजगणितं लघुभास्करेण॥

अपने पिता एवं गुरु से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर सन् ११५० ईसवी में आपने खगोल विज्ञान के अद्भुत ग्रन्थ सिद्धान्त शिरोमणि की रचना की। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इन्होंने स्वयं अपने ग्रन्थ पर भाष्य और उपपत्ति लिखी है तथा अपने पूर्ववर्ती वैज्ञानिकों, आचार्यों के मतों का खण्डन करते हुए तदन्तर्गत त्रुटियों को बतलाया है। इनके द्वारा किये गए विस्तृत कार्य से खगोल विज्ञान को सुदृढ़ एवं ठोस समृद्धि तत्कालीन समय में प्राप्त हुई। इस क्षेत्र में इतना व्यापक अनुसन्धान एवं सुष्ठु प्रतिपादन इनके पूर्व एवं उत्तर काल में भी किसी वैज्ञानिक के द्वारा नहीं किया गया और जो वर्तमान काल में भी पूर्णतः मान्य एवं प्रासंगिक है।

भास्कराचार्य को भारतीय आधुनिक गणित का जनक भी माना जाता है। इन्होंने अपने सिद्धान्त ग्रन्थ की रचना के साथ अंकगणित का "लीलावती" नामक और बीजगणित का "बीजगणितम्" नामक ग्रन्थ की भी रचना की है। लीलावती गणित में व्यासपरिधि का सम्बन्ध, समानान्तर एवं गुणोत्तर श्रेणी, वर्ग घन के अन्यान्य विषयों के साथ-साथ कुट्टक गणित (Indeterminate Multiple) क्षेत्रफल, आयतन और गणित की अन्य सूक्ष्मतम विधाओं को दर्शाया है। बीजगणित में द्विघात एवं अनन्तघात समीकरण, द्विपदीय एवं अनन्तपदीय समीकरणों का और बीजगणितीय प्रक्रिया से आसन्नवर्ग घन, मूलानयन (वर्गमूल व घनमूल) एवं अन्य बीजगणितीय प्रक्रियाओं का वृहद् प्रतिपादन किया गया है तथा त्रिकोणमिति (Trigonometry) के श्लोकबद्ध सूत्रों की व्याख्या स्पष्ट रूप से सिद्धिान्त शिरोमणि ग्रन्थ के अन्तिम भाग के ज्योत्पत्ति अध्याय में भास्कराचार्य ने दी है। उपरोक्त तीनों ही ग्रन्थों का अवलोकन गणितज्ञों को अवश्य ही करना चाहिए।

अभियन्त्रण (Engineering) के क्षेत्र में भी इनकी विलक्षण प्रतिभा थी। सिद्धान्त

शिरोमणि के गोलाध्याय के यन्त्राध्याय में यन्त्र रचना एवं उसके प्रयोग की विधि का विस्तृत विवेचन है और अलग से "सर्वतोभद्राख्ययन्त्रम्" नामक यान्त्रिकी ग्रन्थ की भी रचना इनके द्वारा की गई। इस ग्रन्थ में वेधालयीय यन्त्र निर्माण के अलावा स्वयंवह यन्त्र (Automobile Machine) एवं फलक यन्त्र निर्माण की प्रक्रिया का विस्तृत विवेचन है। जिसका कुछ अंश सिद्धान्त शिरोमणि के यन्त्राध्याय में उन्होंने बताया है। सम्प्रति यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है। इसके अतिरिक्त चन्द्रमा की गतिवैषम्यता को समाप्त करने के लिए एक विशिष्ट लघुग्रन्थ "बीजोपनयः" की रचना भी इनके द्वारा की गयी है जो कि अद्भुत रचना है। इनके ग्रन्थों को देखने से यह जान पड़ता है कि भारत की एक महान विभूति एक महान वैज्ञानिक आचार्य भास्कर थे।

जीवनी लेखक की टिप्पणी

भास्कराचार्य का उपरोक्त जीवन वृत्तान्त मैंने विभिन्न प्रामाणिक ग्रन्थों से प्राप्त उद्धरणों एवं ब्रह्मगुप्त प्राच्य ज्योतिष विश्लेषण वेधशाला संस्थान के आंकिक विश्लेषण विभाग द्वारा प्राप्त अभिलेखों एवं आँकड़ों के सम्यक् अध्ययनोपरान्त लिखा गया है। निश्चय ही हमारे प्राचीन ज्योतिषविदों में विलक्षण प्रतिभा थी जो आज भी देदीप्यमान है। बड़ी से बड़ी खगोलीय घटनाक्रमों को कम से कम शब्दों के श्लोक में दर्शा देते थे जो पूर्णतः अकाट्यता के साथ हैं।

केशवलाल शास्त्री
(एम.ए. अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र)
निदेशक,
ब्रह्मगुप्त वेधशाला संस्थान

सूत्र सारणी

इस पुस्तक में सिद्ध किए गए प्रमुख सूत्र

१ - (चं.ग.- चं.उ.ग.) - २ x (चं.ग.+ सू.ग.) .... = ग' (विषमगति)

२ - ग' • का⊙ .... = के' (विषमकेन्द्र)

३ - ग☾ - (२ ग⊙ - ग'/ २) .... = ग$'_{१}$ (सापेक्ष वियोगगति)

४ - इ. - ज्या (ग$'_{१}$ • का) • इ .... = फ (परम चरबीज फल)

५ - ज्या अ (र + २ इ) ÷ र .... = ज्याके$_{१}$

६ - [ज्या अ (र + २ इ) ÷ र] ± न•फ .... = ज्याके$_{न}$

७ - ज्या के$_{न}$ • च ÷ र .... = फ$_{न}$ (इष्ट चरबीजफल)

८ - ज्या के$_{१}$ • च$_{१}$ ÷ च$_{२}$ .... = ज्याके$'_{१}$

९ - च$_{२}$ • ज्याके' ÷ र .... = फ$_{२}$

१० - इ - ज्या (∆का • ग') • इ .... = ∆इ (च्युतिफल)

११ - ज्या (२इ' - के) • ∆इ .... = फ$_{१}$ (इष्ट च्युतिफल)

१२ - ज्या२ (चं$_{१}$ - सू$_{१}$) • फ$'_{२}$ .... = इ फ$'_{२}$ (इष्ट तिथिफल)

१३ - [(ज्या$_{न}$ - ज्या२ के')•फलान्तर÷ज्यान्तर] + फ$_{२}$ ... = इफ$'_{२}$

१४ - चं न = अ सू (१ / ज^{३} - १ / अ^{३}) .... = व्यवधानबल

१५ - चं न = अ सू (१ / ज^{३} - १ / अ^{३}) कोज्याक्ष .... = त्रैज्यिकबल

१६ - न नां = अ सू (१ / ज^{३} - १ / अ^{३}) ज्याक्ष .... = स्पार्शिकबल

१७ - कोज्याक्ष .... = $\sqrt{\frac{१}{३}}$

गणितीय सङ्केत चिह्न

इस पुस्तक में प्रयुक्त समीकरणों एवं गणितीय विवरणों में संकेतकों काप्रयोग किया गया है उनके नाम निम्नलिखित हैं।

+	धन	-	ऋण
±	धनर्ण	के	केन्द्र
•	गुणा	x	गुणा
÷	भाग	√	वर्गमूल
°	अंश	′	कला
″	विकला	‴	प्रतिविकला
⊙	सूर्य	☾	चन्द्र
∆	छोटा अन्तराल (डेल्टा)	⊙	समय सूचक
∠	कोण	'	स्वरविशिष्ट (डैश)
>	बड़ा है	<	छोटा है

शुद्धि-पत्र

विज्ञप्ति—इस शुद्धिपत्र में निर्दिष्ट शुद्धि द्वारा पुस्तक में यथास्थान समस्त अशुद्धियों को सर्वप्रथम शुद्धकर तत्पश्चात् पुस्तक पढ़ना सम्यकृतया आरम्भ करें।

पृ.सं.	*पंक्तिसं.*	*अशुद्ध*	*शुद्ध*
		(प्रस्तावना)	
i	३२	प्रभेद	प्रभेदः
iii	३	खार्कैर्हता	खार्कैर्हताः
iv	३५	तोष्य	तोष
		(बीजोपनय)	
१	२	ही	हि
१	२४	एवम्	एवं
१	२८	स्फुटं ग्रहं	स्फुटग्रहं
२	६	अन्तेति	अन्ते इति
३	१०	एवम्	एवं
४	२	Longituoqe	Longitude
४	३०	स्यातू	स्यात्
५	२४	और	ओर
८	११	के'	के
९	२५	Inoqica	Indica
१०	१७	कदम्बप्रोत-वृत्त	कदम्बप्रोतवृत्तके
१२	१५	द्वया	द्वया
१३. (श्लो.)	२२	धरित्र्या	धरित्र्याः
१४	२२	सुधियावगम्यम्	सुधियावगम्या
१५	५	विरोध	न विरोध
२०	२२	गुणेन्दु	गुणेन्दू
२२	१५	फ	फ'
२३	७	६०″ ज्या (स - ब)	६०″ x ज्या (स - ब)
२५	२४	ज्या अ (र + २इ ÷ र)	ज्या अ (र + २इ) ÷ र
२६	२०	चरम	परम
२८	२९	चर बीज फल	चरबीजफल
२९	१६	तिथिकेन्द्रांश्च	तिथिकेन्द्रांश
३०	२०	होत	होता
३०	२९	ज्याके,	ज्याके'
३५	२१	और	ओर
३६	२३	परनिपातित	पर निपातित
३६	२७	पूर्ववत	पूर्ववत्
३७	१५	शंका	शङ्का
३८	२८	तथा	तथापि
३९	११	परमार्थिकी	पारमार्थिकी
३९	३६	सारेखा	सा रेखा
४०	१७	अंकित	अङ्कित
४०	२०	अकित	अङ्कित
४२	३	भगणाः	भगणः
४२	३	साक्षात	साक्षात्
४३	१५	यप्यदत्रा	यद्यदत्रा

॥श्रीहरिः॥

भास्करीय बीजोपनयः

उक्तं सपरिकरं करणं सोपपत्तिकं गणितगोलयोः। इदमत्र परिशिष्टं वक्तव्यं यत् बीजोपनीतिरहस्यप्रपञ्चनम्। तत् ही मध्याधिकारान्ते अत्र वक्ष्यमाणमुपजीव्य संक्षिप्तम्। अत्र केचिन्मुधाभिमानिनो वदन्ति दृक्संवादार्था बीजोपनीतिः आगमैकशरणानामनादरणीयेति। तत्तु "तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहाः" इत्यादि सूर्योक्तिविरोधादागमैकशरणानामादरणीयमेव। अपरेत्वस्य क्वाचित्कविनियोगात् प्रयोजनमान्द्यं मन्यन्ते। तदपि तिथ्यादिकरणाम्नानप्रकरणविरोधादुपेक्षणीयम्। न हि केनचिदागमेन मध्याध्याये तिथ्याद्यानयनमाम्नातम्। अन्ये तु स्पष्टीकरणमबीजपर्यन्तं मन्यन्ते। तदपि प्रामाणिकैः मध्यग्रह एव बीजोपनयस्यानुष्ठानात् तथैव निबन्धनाच्च प्रतिक्षेप्यम्। इतरे तु अस्तु स्पष्टीकरणाय स्थिरबीजोपनयमात्रम्, तथापि न तस्य दृगैक्यमावश्यकमिति प्रत्यवतिष्ठन्ते। तदपि "ग्रहाः यथा दृक्तुल्यतां प्रयान्ति तत् स्फुटीकरणम्" इति सूर्योक्तिविरोधात् असमञ्जसमिति "स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यमद्य" इति पूर्वमेवदत्तोत्तरम्। एके च बीजोपनयप्रयासभीताः तन्द्रालवो बीजोपनयागमस्य प्रक्षिप्ततामारोप्य अप्रामाण्यमुररीचक्रुः। तन्मतं निर्बीजमेवेति नाद्रियामहे। वक्ष्यमाणरीत्या तदुद्भावितप्रक्षेपानुमानानां तर्काभासत्वात्। अपरे त्वविस्रब्धा गणितागमानां तथा तथा नानाप्रकारपाठश्रवणात् बीजोपनयस्य हानमुपादानं वा किमादर्तव्यम् इत्यान्दोलितहृदया भवन्ति। ते च भगणवासनायामस्मदुक्तरीत्या सांप्रतोपलब्ध्यनुसारिणि कस्मिंश्चिदागमे विस्रम्भं प्रापणीयाः। उक्तं च "बीजोपनये उपलब्धिरेव वासनेति"। परप्रत्ययनेयबुद्धयः परे च ब्रह्मगुप्ताद्यङ्गीकृतमेवशास्त्रं प्रमाणयन्ति। तेऽपि तेषामप्युपलब्धिशरणतां श्रावयितव्याः। यथाह ब्रह्मगुप्तः "ज्ञातं कृत्वा मध्यं भूयोऽन्यदिने तदन्तरं भुक्तिः। त्रैराशिकेन भुक्त्या कल्पग्रहमण्डलानयनम्" इति ग्रहज्ञानप्रकारश्च गणिताधिकारे भगणवासनायां स्पष्टीकृतोऽस्माभिः। अत्रापि दृङ्मात्रं प्रदर्श्यते। आदौ तावत् ग्रहवेधार्थं भगोलं ब्रह्मोक्तविधिना विषुवद्वलयक्रान्तिवलयकदम्बद्वयप्रोतवेधवलयादियुक्तं विपुलं गोलयन्त्रं कार्यम्। ततः तत् गोलयन्त्रं द्वादशाङ्गुलशङ्कुच्छायासाधितध्रुवाभिमुखाक्षांशोन्नतयष्टिकं जलशुद्धक्षितिजवलयं स्थापयेत। अथ रात्रौ गोलमध्यचिह्नगतया दृष्ट्या रेवतीदक्षिणतारां विलोक्य क्रान्तिवलये यो मेषादिः तं तत्समं निवेश्य मध्यगतयैव दृशा ग्रहं विलोक्य तद्ग्रहोपरि कदम्बप्रोतं वेधवलयं निवेश्यम्। एवम् निवेशिते तस्य क्रान्तिवृत्तस्य च यः सम्पातः तस्य रेवतीतारास्थानस्य च यदन्तरं तावानेव तात्कालिको लम्बनसंस्कृतस्फुटग्रहः। अथ क्रान्तिवृत्तस्य ग्रहबिम्बमध्यस्य च यावदन्तरं, तावानेव तस्य विक्षेपः। ततः पुनः षष्टिघटिकानन्तरं ग्रहः तथैव वेधनीयः। एवं द्वितीयदिने लम्बनसंस्कृतस्फुटं ग्रहं ज्ञात्वा तयोर्यदन्तरं तत्र वेधनाकालिकं लम्बनखण्डान्तरं प्राक्कपाले विशोध्य पश्चात्कपाले संयोज्य निष्पादितं यत् तत् तद्दिनस्फुटगतिः। एवं आभगणान्तं गतयः प्रतिवासरं ज्ञेयाः। अथ यस्मात् तन्त्रात् आनीता ग्रहगतिः तत्तद्ज्ञातगतिसमाना स्यात् तदा तदेव तन्त्रं प्रमाणम्। तदन्यानि कालान्तरे प्रमाणानि भविष्यन्ति इत्युपलब्ध्यनुसारी बीजोपनय आवश्यक एव। केचिच्च, सूर्यादिभिः विशेषतोऽनुपदिष्टत्वात् ग्रहणादितोऽन्यत्र बीजकर्म न कार्यमित्याहुः। तद्वचनं वञ्चनामात्रम्। ग्रहणादिष्वपि तत् संस्कारस्य अनुपदिष्टत्वात्। योग्यविषये प्रत्यक्षप्राबल्यं तु तिथ्यादिसाधनोपयुक्ते स्फुटग्रहेऽपि समानम्। तत्तद्ग्रहाणा-

महरर्द्धेषु तेषामपि प्रत्यक्षसिद्धत्वात्। तस्मात् बीजोपनयस्यावश्यकत्वात् गणितगोलयोः प्रणयनानन्तरं चरबीजस्य तदुभयसापेक्षत्वाद्धेतोः इदानीं बीजोपनयः कर्तव्य इति सङ्गतिः।

मयाय बीजोपनये यदन्ते सूर्योक्तमाद्यं परमं रहस्यम्।
प्रकाशये गोप्यमपीह देवं प्रणम्य बीजं जगतां हितार्थम्॥ १ ॥

वासनाभाष्य—अथ बीजोपनयाख्यमधिकारमारभमाणः तदसाङ्गत्यं परिहरन् देवातानमस्कार-पूर्वकं सप्रयोजनं प्रतिजानिते मयायेति। बीजोपनये बीजोपनयाध्याये। अन्तेति असाङ्गत्य-शङ्काबीजम्। सूर्योक्तमिति प्रक्षेपशङ्काव्युदासः। तत्र हेतुराद्यमिति। खखाभ्रार्कवर्षपरिमित-क्षयवृद्धिकस्य बीजोपनयस्य पुनः पुनः कल्पादिकालात् प्रभृतिपरिवर्तमानस्य उपलब्धिरूप-वासनाया अधुनातनासर्वज्ञदुःसम्पादत्वादयं बीजोपनय आगमान्तर्गत एवेतिभावः। तर्हि कुत इदं मध्याध्याय एव नोक्तम्। कुतो वा न प्रश्ने प्रस्तावितमित्यत आह परमं रहस्यमिति। गोप्यतमत्वादेव पृथगुक्तिरितिभावः। न हि गोप्यतमस्य सार्वजनीनमापातदर्शनमस्ति येन प्रश्नेषु तदुपक्षिप्येत। गोप्यतमस्य प्रकाशनमयुक्तमित्यत आह जगतामिति। जगतामित्यस्य बीजमित्यत्राप्यन्वयः। जगत्कारणभूतं देवं प्रणम्य गोप्यमपि जगतां हितार्थं प्रकाशये इति योजना। एतेन केशाञ्चित्तदध्यायानां व्याख्यानमपि व्याख्यातं रहस्यतमत्वेनैव गोपितत्वात्।

भाषा—भगवान् सूर्य के द्वारा मयासुर को बीजोपनयनाध्याय में, जो कि सूर्य सिद्धान्त के अन्तिम अध्यायान्त में है, बीज कर्म नामक परमगूढ़ रहस्य का प्रतिपादन किया गया। उस परम गोपनीय बीज पदार्थ को मैं (ग्रन्थकार) लोककल्याण हेतु जगत्कारणभूत सूर्यदेव को प्रणाम कर प्रकाशित कर रहा हूँ।

यद्यपि पूर्वमपीदं संक्षेपादुक्तमागमोक्तदिशा।
नैतावतैव कश्चित् दृक्करणैक्यायकल्पते गणकः॥ २ ॥

दृक्करणैक्यविहीनाः खेटाः स्थूला न कर्मणामर्हाः।
अत इह तदर्हतायै तात्कालिकबीजविस्तरं वक्ष्ये॥ ३ ॥

वासनाभाष्य—अथेदानीं विस्तरेण बीजोपनयारम्भस्य प्रयोजनमाह यद्यपीति। पूर्वं मध्यगति-साधनाधिकारान्ते "खाभ्रखार्कैर्हृताः" इत्यादिश्लोकेश्वित्यर्थः। आगमोक्तदिशा,

"चक्रानुपातजो मध्यो मध्यवृत्तांशजस्फुटः।
कालेन दृक्समो न स्यात्ततो बीजक्रियोच्यते॥१॥
राश्यादिरिन्दुरङ्कघ्नो भक्तो नक्षत्रकक्षया।
शेषं नक्षत्रकक्ष्याया त्यजेत शेषकयोस्तयोः॥२॥
यदल्पं[1] तत् भजेत् भानां कक्ष्यया तिथिनिघ्नया।
बीजं भागादिकं तत्स्यात् कारयेत्तद्धनं रवौ॥३॥
त्रिगुणं शोधयेदिन्दौ जिनघ्नं भूमिजे क्षिपेत्।
दृग्यमघ्नमृणं ज्ञोच्चे खरामघ्नं गुरावृणम्॥४॥
ऋणं व्योमनवघ्नं स्यात् दानवेज्यचलोच्चके।
धनं सप्ताहतं मन्दे परिधीनामथोच्यते॥५॥
युग्मान्तोक्ताः परिधयो ये ते नित्यं परिस्फुटाः।
ओजान्तोक्तास्तु ते ज्ञेयाः परबीजेन संस्कृताः॥६॥

१. यल्लब्धम् ?

वच्मि निर्बीजकानोजपदान्ते वृत्तभागकान्।
सूर्येन्द्वोर्मनवोदन्ताः धृतितश्च[१] कलोनिताः ॥७॥
बाणतर्का महीजस्य सौम्यस्याचलबाहवः।
वाक्पतेरष्टनेत्राणि व्योमशीतांशवो भृगोः ॥८॥
शून्यर्तवो[२]ऽर्कपुत्रस्य बीजमेतेषु[३] कारयेत्।
बीजं खाग्न्युद्धृतं शोध्यं परिध्यंशेषु भास्वतः ॥९॥
इनाप्तं योजयेदिन्दोः कुजस्याश्वा[४] (श्वि-) हतं क्षिपेत्।
विदश्चन्द्रहतं योज्यं सूरेरिन्द्रहतं धनम् ॥१०॥
धनं भृगोर्भुवानिघ्नं रविघ्नं शोधयेच्छनेः।
एवम् मान्दाः परिध्यंशाः स्फुटाः स्युर्वच्मि शीघ्रकान् ॥११॥
भौमस्याभ्रगुणाक्षीणि बुधस्याब्धिगुणेन्दवः।
बाणाक्षा देवपूज्यस्य भार्गवस्येन्दुषड्यमाः ॥१२॥
शनेः चन्द्राब्धयः शीघ्रा ओजान्ते बीजवर्जिताः।
द्विघ्नं स्वंकुजभागेषु बीजं द्विघ्नमृणं विदः ॥१३॥
अत्यष्टि[५]घ्नं धनं सूरेरिन्दुघ्नं शोधयेत्कवेः।
चन्द्रघ्नमृणमार्कस्य[६] स्युरेभिर्दृक्समा ग्रहाः ॥१४॥"

इत्यागमोक्तानुसारेणेत्यर्थः। तदपर्याप्तमित्याह तावतेति। दृक्करणैक्याय स्पष्टीकरणायेत्यर्थः। यथा दृक्तुल्यतां ग्रहाः प्रयान्ति तत् स्फुटीकरणमिति तल्लक्षणात्। नन्विदमसम्भावितमेव। पारमार्थिकग्रहसञ्चारस्य "भूमेर्मध्ये खलु भवलयस्यापि मध्यम्" इति पूर्वोक्तं भवलयमध्यदृश्यत्वे भूपृष्ठगानां तद्वेधनासम्भवात्। उच्यते। सत्यं भवलयमध्यस्थदृश्यमेव तत्। तथापि प्रथमं कल्पादौ ब्रह्मणा त्रिभोनलग्नसम्पातोच्चसूत्रप्रोतमणिगणवत् ग्रहाणां स्थापितत्वेन तेषामुच्चसूत्रादेव प्रवृत्तत्वात् परीक्षादशायामपि तत्रैव निर्लम्तया वेधनसौकर्याच्च तत्कालदृशो भवलयमध्यदृग्रूपत्वान्न दोष इति ध्येयम्। दृक्करणैक्याभावे को दोष इत्यत्राह खेटा स्थूला न कर्मणामर्हा इति। खेटानां कर्मार्हत्वं कर्माङ्गकालावच्छेदकक्रियावत्तया बोध्यम्। "मध्ये चान्द्रमसे मासि नास्ति मध्यार्कसंक्रमः। यत्रासावधिकः पापी शुभकर्मविनाशनः। यन्मासान्ते संक्रमः स्यान्मध्यार्कस्य स चाधिकः" इत्यादि ब्रह्मसिद्धान्तवचनैः मध्यग्रहैरप्यधिमासादिसाधनस्योक्तत्वात् तेषां कथं कर्मानर्हत्वमिति चेत् सत्यम्। तत्र कर्मानुष्ठानार्थमुक्तम्। मध्यग्रहानयनवत् स्फुटाधिमासाद्यानयनार्थमेव। अत एव मध्याधिमासम् अधिमास इति यः कोऽपि न व्यवहरति। मध्यग्रहानीततिथ्यादिषु शुभाशुभकर्माणि न कुर्यात्। यदि कुर्यात्तर्हि मध्यग्रहणेऽपि तदाप्येत। न चैवं लम्बनावनत्यादि दृक्कर्मसंस्कृतैरेव ग्रहैः तिथ्याद्यानयनप्रसङ्गः त्रिभोनलग्नसूत्रस्थग्रहाणां लम्बनाभावात् अवनत्यादेः प्राक्पश्चिमान्तरहेतुत्वाभावाच्च। भूगर्भस्थ भवलयमध्यापेक्षया हि स्फुटक्रिया स्फुटवासनायामुक्ता। शिष्टं स्पष्टम्।

भाषा—पूर्व में भी इस बीज संस्कार को संक्षेप में आगमशास्त्रोक्त पद्धति से कहा गया है, तथापि कोई भी गणक (खगोल ज्योतिषी) सम्प्रति इसको दृग्गणितैक्यता हेतु कल्पित नहीं करते हैं। दृग्गणितैक्यता से रहित ग्रह स्थूल एवं धर्मानुष्ठानादि कर्म हेतु अनुपयुक्त (अनर्ह) होते हैं। अतः यहाँ पर ग्रहों को (सूर्य-चन्द्र ग्रहों को) दृक्तुल्यता के योग्य, धर्मानुष्ठानोपयोगित्व करने के लिए विस्तारपूर्वक तात्कालिक बीज कर्म कह रहा हूँ।

१. तत्त्व। २. सूर्यर्तवो। ३. न। ४. श्व / ५. न्त्य। ६. र्कैस्तु तथा र्कैश्च।

विज्ञानभाष्य–वेधालयीय यन्त्रों की , सहायता से प्रेक्षणोपरान्त प्राप्त सूर्यादि ग्रहों के भोगांश (LongituoQe) तथा सिद्धान्त ग्रन्थों के सूत्रों की सहायता से अङ्कानुसन्धानोपरान्त प्राप्त ग्रह भोगांशों की साम्यता को दृग्गणितैक्य ग्रह कहा जाता है। सूर्यसिद्धान्तादि आर्षग्रन्थों एवं इस विषय से सम्बद्ध आगमशास्त्रों में ग्रह भोगांश तथा उनकी मन्द-शीघ्र परिधि इत्यादि में बीज संस्कार करने की प्रक्रिया बताई गई है, परन्तु उक्त प्रक्रिया से केवल मध्यमग्रहों में कालान्तर जन्य अन्यथा पड़ने वाली त्रुटि को ही शुद्ध किया जा सकता है, दृग्गणितैक्य नहीं किया जा सकता। क्यों कि आगमशास्त्रोक्त बीज संस्कार स्थिर एवं कालान्तरजनित संस्कारमात्र हैं। इससे सूक्ष्म-दृक्सिद्ध ग्रहों का आनयन नहीं हो सकता।

चूँकि भारतीय ज्योतिष का सम्बन्ध भारतीय धर्मानुष्ठान एवं लोकाचार से है तथा यह धर्मानुष्ठान पूर्णतया कालाश्रित है और काल का मापन सिद्धान्त ज्योतिष द्वारा किया जाता है। काल की सूक्ष्मता सूर्य-चन्द्र के सूक्ष्म-दृक्सिद्ध निर्देशाङ्कों पर आश्रित है एवं परस्पर सापेक्ष सम्बन्ध रखती है। यदि सूर्य-चन्द्रादि ग्रह ही स्थूल, दृग्गणितैक्यतारहित होंगे तो धर्मानुष्ठानादि भी अशुद्ध, स्थूल होंगे। अर्थात् अशुद्ध गणित से प्राप्त अशुद्ध काल में किए गए धार्मिक अनुष्ठानादि कर्मफल में शुभत्व का अभाव होगा। उनसे शुभफल की प्राप्ति सम्भव नहीं होगी। ऐसी स्थिति में किया गया धर्मानुष्ठानादि कर्म का फल निष्प्रभावी सिद्ध होगा। धर्मानुष्ठानादि कर्मफल विपाक अशुद्ध एवं निष्प्रभावी न हो तथा काल की सूक्ष्मता पूर्ण शुद्धरूप में प्राप्त हो सके इसके लिए काल नियामक ग्रह सूर्य-चन्द्र के निर्देशाङ्कों में, प्रमुख रूप से मन्दस्पष्ट एवं स्पष्ट मध्यम चन्द्र के भोगांश में तात्कालिक गणित (अवकलन, Differential calculus) के द्वारा सिद्ध किए गए चरबीजफल के संस्कार की प्रक्रिया इस बीजोपनय ग्रन्थ में बतलाई गई है।

चूँकि चन्द्रमा की सापेक्ष गति एवं अहर्गण[1] के गुणनफल से प्राप्त मध्यम चन्द्र की केन्द्रज्या अथवा दैनिक अन्तरांश की ज्या में वृद्धि प्रतिघटि समरूप न होकर विषम होती है। साथ ही चन्द्रत्वरण[2] एवं उसकी दैनिक गति भी तीव्रतर है, अतः स्थिर बीज संस्कार चन्द्रमा के लिए अनुपयुक्त है। अतः इसके लिए दैनिक अथवा प्रतिघटि विषमरूप से परिवर्तनशील, चलायमान बीजाङ्क की आवश्यकता होगी जिसका आनयन तात्कालिक गति-विवेचनाधार पर ही सम्भव है। बीजफल के नित्य चलायमान एवं विषमगतिक होने के कारण इसकी चर (Variable) बीजफल संज्ञा आचार्य भास्कर ने की है।

पाता रवेस्तामसकीलकाख्यास्तेषां समाकर्षणतः शशाङ्कः।
तत्तुङ्गशक्तिश्च निजस्वभावं विहाय नित्यं विषमत्वमेति ॥४॥
चन्द्राच्च तद्योगवियोगतश्च साध्यं हि भाद्यं विषमं यतः स्यात्।
तस्माद्विधोरत्रविशुद्धिशुध्यै विस्तार्यते बीजफलक्रियेयम् ॥५॥

वासनाभा.–इदानीं चन्द्रमात्रस्य विस्तरतो बीजसंस्कारकथनहेतुमाह। पाता रवेरिति। कर्मार्हकालसाधने चन्द्रस्यैव विशेषोपयोगात् तस्यैव वैषम्यातिरेकाच्च तद् बीजकर्मैवात्र प्रपञ्च्यत इति स्पष्टम्।

---

१. सृष्ट्यादि से अथवा किसी निश्चित शकाब्द या सन् से वर्तमान काल तक के सावन दिन (Sidereal dey) समूह।

२. चन्द्रत्वरण=गति और परिक्रमण कालवृत्तीयव्यासार्धानुपात।

भाषा—सूर्य के तामस तथा कीलक नामक पातों के सम्यक् आकर्षण से चन्द्र और उसकी उच्चशक्ति (गति) अपने स्वभाव को छोड़कर अर्थात् चन्द्रोच्च एवं चन्द्र अपनी स्वाभाविक गति के विपरीत प्रतिदिन विषमत्व को प्राप्त होते हैं।

राश्यादि चन्द्र से और उसके योग-वियोग से अर्थात् राश्यादि चन्द्र, चन्द्रोच्च एवं सूर्य के परस्पर योगान्तर द्वारा ही विषमत्व साध्य होता है। चूँकि विषमता (असमानगतित्व) चन्द्र में होती है इसलिए चन्द्र-विशुद्धि की शुद्धि के लिए यहाँपर बीजफल-क्रिया विस्तारपूर्वक निरूपित करते हैं।

विज्ञानभाष्य—चन्द्रमा पर पृथ्वी तथा सूर्य का आकर्षण बल कार्य करता है। अपनी कक्षा के उच्चबिन्दु पर स्थित चन्द्र की गमनप्रवृत्ति पृथ्वी तथा सूर्य के सम्यक् आकर्षणवशात् अपने क्रान्तिपात तथा क्षेपपात बिन्दुओं की ओर हीती है। अतः क्रमशः क्रान्तिपात बिन्दुओं की ओर तथा क्षेपपात बिन्दुओं की ओर चन्द्राकर्षण पाताभिमुखी आकर्षण हुआ। यह उक्त पातबिन्दुओं का परावर्तित आकर्षण है जो प्रेक्षक को परिणाम रूप में दृश्य होता है।

चन्द्रकक्षावृत्त तथा सूर्यकक्षावृत्त (क्रान्तिवृत्त) के सम्पात को क्षेपपात कहते हैं। यह क्षेपपात परस्पर १८० अंशों के अन्तराल पर दो स्थानों पर होता है। प्रथम सम्पात की राहु तथा द्वितीय सम्पात की केतु संज्ञा सिद्धान्त ज्योतिष में की गई है। चन्द्रकक्षावृत्त तथा भू· विषुववृत्त के सम्पात को चन्द्रक्रान्तिपात कहते हैं। यह क्रान्तिपात भी परस्पर १८० अंशों के अन्तराल पर दो स्थानों पर होगा। चूँकि क्रान्तिपात के निर्माण में सहायक विषुववृत्त भू· केन्द्र के स्थिर होने के कारण स्थिर है। यह स्थिति चन्द्रकक्षावृत्त के सापेक्ष बताई गई है। पृथ्वी की आकर्षण शक्ति विषुववृत्त पर एक समान तथा सर्वाधिक होती है तथा सूर्याकर्षण अत्यल्प होता है अतः जिस प्रकार विषुववृत्त एवं क्रान्तिवृत्त सम्पात में सूर्याकर्षणजनित अयनचलन अत्यल्प (५०″) तथा वार्षिक होता है उसी प्रकार से चन्द्रक्रान्तिपात में चलन दृश्य नहीं होता। अत एव चन्द्रक्रान्तिपात स्थिरत्वेन कीलक (स्थिर) पात होगा।

क्षेपपात बिन्दुओं से आगे की ओर गतिशील चन्द्र पर सूर्याकर्षण का प्रभाव क्रमशः उच्च बिन्दु की ओर कम तथा नीच बिन्दु की और अधिक होता है अतः क्षेपपात बिन्दु पर स्थित चन्द्र की प्रवृत्ति पृथ्वी तथा सूर्य के आकर्षणवशात् क्रमशः अपने उच्च तथा नीच बिन्दु की ओर गमन करने की होगी। और अपने उच्च तथा नीच बिन्दु की ओर चन्द्र का यह आकर्षण भी उक्त बिन्दुओं का आभासित (Appurent) प्रत्याकर्षण होगा। चूँकि चन्द्र पर आकर्षण बल संयुक्त रूप से तो पृथ्वी तथा सूर्य का ही लगता है परन्तु चन्द्रमा का अपने उच्च तथा नीच बिन्दुओं की ओर पृथ्वी तथा सूर्य के संयुक्त आकर्षण बल के परिणामस्वरूप खींचा जाना ही आकर्षण बल की परावर्तित (Reflective) प्रतीति है। वास्तव में आकर्षण शक्ति की गणितीय अनुभूति मात्र ही की जा सकती है। प्रत्यक्ष रूप में सम्पातबिन्दुओं और ग्रह की गति के रूप में तथा उसमें उत्पन्न होने वाली विषमता के रूप में परिणाममात्र दृश्य होता है।

वस्तुतः क्रान्तिपात, क्षेपपात अदृश्य एवं काल्पनिक सम्पातबिन्दु हैं। इनका कोई भी मूर्तरूप नहीं है। परन्तु इन बिन्दु विशेषों पर सूर्यकृत एवं भूकृत आकर्षण प्रभावजन्य गणितीय प्रतीति इनके दैनिक गतिरूप में अवश्य होती है। इस आकर्षण प्रभाव के परिणाम स्वरूप ही चन्द्रोच्च तथा चन्द्रपात (क्षेपपात) में गति उत्पन्न होती है तथा चन्द्रगति और उच्चाकर्षणी-

शक्ति विषमता को प्राप्त होती है। अतः क्षेपपात (तामसपात) तथा चन्द्रक्रान्तिपात (कीलक पात) सूर्याकर्षणीशक्ति संसक्त होकर चन्द्र को स्वाभिमुख आकृष्ट करते हैं अर्थात् खींचते हैं। इसी कारण चन्द्रोच्च तथा चन्द्र की गति पूर्वाभिमुख तथा सम्पात गति पश्चिमाभिमुख होती है। अतः चन्द्र और चन्द्रोच्च तथा सम्पात बिन्दुद्वय परस्पर एक दूसरे को अपनी ओर आकृष्ट करते हुए परस्पर एक दूसरे के विपरीत दिशा में गतिमान होते हैं।

चूँकि चन्द्रकक्षावृत्त एवं क्रान्तिवृत्त सम्पातबिन्दु पर कोई भी प्रकाशमान पिण्ड दृश्य नहीं होता अतः प्रकाशवर्जित (अन्धकारमय) सम्पातबिन्दु सिद्ध होता है। सूर्य प्रकाशजनित भूछायासूचीछिन्न चन्द्रकक्षावृत्तस्थ सम्पातबिन्दु पर भूछाया प्रदेश वृत्ताकार तथा अन्धकार-मय है और यही अन्धकारमय वृत्ताकारस्वरूप चन्द्रग्रहण होने का कारण बनता है। अन्धकार को ही तमस कहते हैं। अतः अन्धकारमय अर्थात् तमोमय स्वरूपाकृति तामसाकृति हुई। यह तामसाकृति चन्द्रकक्षा का भेदन कर सूर्यकक्षा की ओर निर्गत होती है। परन्तु क्षेपपातातिरिक्त चन्द्रकक्षा के किसी भी अन्य बिन्दु पर यह तामसाकृति वृत्ताकार नहीं होती। क्षेपपातस्थल पर सूर्यकक्षा तथा चन्द्रकक्षा का परमशर तुल्य अन्तराल शून्य हो जाता है। जिससे क्षेपपात बिन्दुद्वयगत रेखा एक धरातलगत होगी। जिस कारण से विपरीत दिशा स्थित सूर्यप्रकाशजनित भूछाया सूची का छिन्न प्रदेश उक्त क्षेपपातबिन्दु पर वृत्तत्व को प्राप्त होगा। चूँकि चन्द्रकक्षावृत्त में ही उक्त तामसाकृति गतिमान होती है अतः चन्द्रकक्षावृत्त ही तामसाकृति का भी कक्षावृत्त हुआ। तथा इस तामसाकृति के कक्षावृत्त का और क्रान्तिवृत्त का सम्पात, चन्द्रपात की तरह तामसपात हुआ। इस तामसाकृति को ही छायाग्रह अथवा राहु कहा जाता है।

भास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि के स्पष्टाधिकार में चन्द्रगति फलानयन हेतु विशेष व्यवस्था दी है। उनके वचन प्रमाणानुसार चन्द्रगतिफल को प्राप्त करने के लिए उसकी उच्चगति और मध्यमगति के अन्तरतुल्य केन्द्रगति ग्राह्य करते हैं। चन्द्रगति में ऋण चन्द्रोच्चगति चन्द्रकेन्द्रगति होती है। तात्कालिक गति से चन्द्र का विशेष प्रयोजन है। जिस काल का स्पष्ट चन्द्र हो उस काल से व्यतीत काल में अथवा अग्रिम काल में निकटतम चालन देना हो अथवा तिथ्यन्त आसन्न हो तब तात्कालिक गति से तिथि साधन किया जाता है और चन्द्रमा का समीप चालनानयन भी किया जाता है। जब तिथ्यन्त दूरतर हो अथवा चन्द्र चालन दूरतर हो तब दो दिन के स्पष्ट चन्द्रान्तर तुल्य गति से स्थूलकालत्वात् स्थूल क्रिया द्वारा इसको प्राप्त करते हैं। चूँकि चन्द्रमा की गति अत्यधिक होने के कारण प्रतिक्षण समान नहीं होती है अतः उसके लिए यहाँ पर विशेषरूप से अभिहित किया गया है।

अतः मध्यमचन्द्र में धन-ऋणात्मक रूप से संयोजित किए जाने वाले समस्त संस्कारफलों के तथा उसमें दिए जाने वाले चालनाङ्कों के लिए और तिथ्यादि अन्य पदार्थों के आनयन में चन्द्र की तात्कालिक गति एवं मन्द केन्द्रगति का प्रयोग आवश्यक है। इसी प्रकार चरबीजफलानयन में भी चन्द्रकेन्द्रगति का ही प्रयोग होगा। जिस प्रकार गतिफलानयन के लिए चन्द्र केन्द्रगति तथा मन्दफलानयन के लिए मन्दकेन्द्र का प्रयोग करते हैं उसी प्रकार वैषम्य प्राप्त करने के लिए वैषम्य केन्द्र का आनयन करेंगे। यहाँ पर उपर्युक्त श्लोकार्थ में "चन्द्र से और योग-वियोग से" कहने का तात्पर्य चन्द्र मन्दकेन्द्र से तथा सूर्य-चन्द्र के योगान्तर से है। सूर्य-चन्द्र का अन्तर वियोग हुआ और सूर्य-चन्द्र की युति, योग होगा। अतः इन तीनों के परस्पर अन्तर से वैषम्य केन्द्र साधित करेंगे। यथा—उपपत्ति से।

चन्द्र मध्यम गति	=	ग$_{☾}$				
चन्द्र उच्च गति	=	उ$_{☾}$				
सूर्य मध्यम गति	=	ग$_{\odot}$				
चन्द्र केन्द्र गति	=	ग$_{☾}$-उ$_{☾}$	=	के.ग.	=	ग$_१$
तिथिगति (वियोगगति)	=	ग$_{☾}$-ग$_{\odot}$	=	वि.ग.	=	ग$_२$
योग गति	=	ग$_{☾}$+ग$_{\odot}$	=	यो.ग.	=	ग$_३$
विषम गति	=	ग$_१$-ग$_२$-ग$_३$	=	ग'		.... १
विषम केन्द्र	=	वि. के.	=	के'		
अहर्गण	=	का$_{\odot}$				
अतः वि के	=	ग'•का$_{\odot}$				.... २
(विषम गति x अहर्गण)	=	वैषम्य केन्द्र	-			.... ३

तथा

(चं.ग.- चं.उ.ग.) - (चं.ग. + सू.ग.) - चं.ग. + सू.ग.
= (चं.ग.- चं.उ.ग.) - २ x (चं.ग. + सू.ग.) = विषमगति

अर्थात्,

चन्द्र केन्द्रगति - तिथि गति - योग गति = विषमगति ४

अङ्कानुसन्धान

चन्द्रगति = ७९०′/३४″/५३‴

सूर्यगति = ५९′/८″/१०‴/२१⁗

चन्द्रोच्चगति = ६′/४०″/५४‴

चन्द्रकेन्द्रगति = (चं.ग. - उ.ग.) .... = ग$_१$
= ७९०/३४/५३ - ६/४०/५४
= ७८३/५३/५९ .... = ग$_१$

तिथिगति = (चं.ग. - सू.ग.) .... = ग$_२$
= ७९०′/३४″/५३‴ - ५९′/८″/१०‴/२१⁗
= ७३१′/२६″/४२‴/३९⁗ .... = ग$_२$

योगगति = (चं.ग. + सू.ग.) .... = ग$_३$
= ७९०′/३४″/५३‴ + ५९′/८″/१०‴/२१⁗
= ८४९′/४३″/३‴/२१⁗ .... = ग$_३$

ग$_१$ - ग$_२$ - ग$_३$ .... = ग' (विषमगति)
= ७८३′/५३″/५९‴ - ८४९′/४३″/३‴/२१ - ७३१′/२६″/४२‴/३९
= ७८३′/५३″/५९‴ - ११८′/१६″/२०‴/४२⁗
= ६६५′/३७″/३८‴/१८⁗ .... = ग' (विषमगति)

चूँकि शक १०७३ में भास्कराचार्य ने परम चन्द्र वैषम्य को वेध द्वारा निरूपित किया था जैसा कि इस पुस्तक के "रसगुणाभ्रमहीशकवत्सरे" इत्यादि श्लोक में उनके द्वारा कहा गया है। अतः उक्त शक से वर्तमान शक तक का अहर्गण उन्हीं के करणग्रन्थ करण कुतूहल द्वारा ३१०१०२ आता है। इस अहर्गण से वैषम्य केन्द्रानयन करने पर।

अहर्गण = का०, विषमगति = गं

चन्द्रवैषम्य केन्द्र = कें = का० • गं

अतः,

३१०१०२ = अहर्गण, विषमगति = ६६५′/३७″/३८‴/१८⁗ = ६६५.६२७३०५६

कें = ३१०१०२ X ६६५.६२७३०५६

कें = २०६४१२३५८.७′

इसका भगणादि मान इस प्रकार है–

के' = ९५५६/१/१५°/५८.७′

भगण को छोड़कर राश्यादि मान लेन पर–

१/१५°/५८.७′ = ४५°/५८.७ = कें (चन्द्र वैषम्य केन्द्र)

यह भगणादि वैषम्यकेन्द्र मध्यमचन्द्र तथा चन्द्रोच्च के अन्तर से और मध्यम चन्द्र तथा मध्यम सूर्य के योगान्तर से ही साध्य किया गया है।

सारांशतः श्लोक का भाव यही है कि सूर्य के आकर्षण से चन्द्र की स्वाभाविक दैनिक गति समान न होकर असमान होती है। उक्त असमानता चन्द्र, चन्द्रोच्च तथा सूर्य के परस्पर योग अन्तर से ही ज्ञात की जाती है। चन्द्र की इस विषमता (असमानता) के शुद्धीकरण हेतु बीजफल की आवश्यकता पड़ती है जिसको प्राप्त करने के लिए गणितीय प्रक्रिया का निरूपण इस पुस्तक में किया गया है।

एकेन पुंसां निखलग्रहाणामन्तं प्रवेधो नहि शक्यतेऽतः।
व्यासात्समासाच्च यथोपलम्भं प्रोक्तं मयेत्यादरणीयमेतत् ॥ ६ ॥

वासनाभाष्य–यथेदानीं ग्रहान्तराणामुपयोगातिशयाभावेऽपि प्रत्ययार्थं वा जातकादि-फलज्ञानार्थं वा बीजकर्म कुतो न विस्तारितमित्यत्राह। एकेन पुंसेति। निगदितव्याख्यातं स्पष्टमेव। अशक्त्युपपत्तिर्भगणवासनायां स्पष्टा।

भाषा–किसी एक व्यक्ति के द्वारा समस्त ग्रहों का आभगणान्त भलीभाँति वेध कर पाना सम्भव नहीं है। अतः व्यास और समास से अर्थात् विस्तार-संक्षेप से जैसा उपलब्ध हुआ उस रूप में मैंने बीजकर्म को कहा, जो कि सज्जनों के द्वारा समादरणीय है।

विज्ञानभाष्य–भास्कराचार्य ने सिद्धान्त शिरोमणि के मध्यमाधिकार भगणाध्याय में "अर्कशुक्रबुधपर्ययाविधेरन्हि कोटिगुणितारदाब्धया" इत्यादि श्लोक के वासनाभाष्य में आभगणान्त अर्थात् सृष्ट्यादि से सृष्ट्यन्त तक के कल्पग्रह भगणारम्भ से भगणान्त तक की वेधकर्म की अशक्यता (असमर्थता) विषयक स्पष्टीकरण उपपत्ति के माध्यम से दिया है। उक्त उपपत्ति को यथानुरूप यहाँ दे रहे हैं।

यथा–**वासनाभाष्य**, अत्रोपपत्तिः–अथ यद्येवमुच्यते गणितस्कन्ध उपपत्तिमानेवागमः प्रमाणम्। उपपत्या ये सिद्ध्यन्ति भगणास्ते ग्राह्याः। तदपि न। यतोऽतिप्राज्ञेन

पुरुषेणोपपत्तिर्ज्ञातुमेव शक्यते। न तया तेषां भगणानामियत्ता कर्तुं शक्यते पुरुषायुषोऽल्पत्वात्। उपपत्तौ तु ग्रहाः प्रत्यहं यन्त्रेण वेध्यः। भगणान्तं यावत्। एवं शनैश्चरस्य तावद्वर्षाणां त्रिंशता भगणः पूर्यते, मन्दोच्चानां तु वर्षशतैरनेकैः। अतो नायमर्थः पुरुषसाध्य इति।

अर्थात् यदि ऐसा कहा जाए कि उपपत्ति मान (प्रमाण) ही गणितस्कन्ध का आगमप्रमाण है, तो उपपत्ति के द्वारा जो भगण सिद्ध होंगे, वही ग्राह्य करें। परन्तु वैसा भी नहीं है। चूँकि अति बुद्धिमान पुरुष के द्वारा उपपत्ति ज्ञात की जा सकती है परन्तु उसके द्वारा ग्रह भगणों की इयत्ता (परिसीमन) नहीं की जा सकती। उपपत्ति में तो भगणान्त तक प्रत्येक दिन ग्रहों का वेध करें। इस प्रकार शनि का एक भगण तीस वर्षों में पूर्ण होता है और ग्रह मन्दोच्चों का सैकड़ों वर्षों में पूर्ण होता है। अतः आभगणान्त ग्रहों का वेध (प्रेक्षण) कर उनकी इयत्ता को प्राप्त करने का कार्य अल्पायु पुरुष द्वारा साध्य नहीं है।

उपर्युक्त कारणों से विस्तार और संक्षेप में जैसा भी हो सके वैसे ऋण-धनात्मक योग-वियोग क्रमानुसार बीजफल की उपलब्धता होती है।

रसगुणाभ्रमहीशकवत्सरेममहिजन्मबभूव महीतले ।
नगगुणोन्मितवत्सरपूरणे यदुत बीजफलं तु मयोन्मितम् ॥ ७॥

वासनाभाष्य–अथेदानीमनन्तरकालीनानां बीजफलोपचयापचयज्ञानार्थं स्वीयबीजोपनयकालमाह। रसगुणेति। स्पष्टा।

भाषा–शक १०३६ में ही मेरा जन्म पृथ्वी पर हुआ। ३७वें वर्ष के पूरणकाल में मेरे द्वारा बीजफल उन्मित किया गया अर्थात् मेरे द्वारा जोड़ा गया।

विज्ञानभाष्य–अनन्तरकालीनों के बीजफल की ह्रास-वृद्धि के ज्ञानार्थ बीजफल द्वय की गणित प्रक्रिया एवं तत्सम्बन्धित सिद्धान्त को सुनिश्चित किए जाने का काल भास्कराचार्य द्वारा इस श्लोक में बतलाया गया है। भास्कराचार्य ने अपने जन्म वृत्तान्त एवं ग्रन्थ-रचनावृत्तान्त को स्वनिर्मित ग्रन्थ सिद्धान्त शिरोमणि के प्रश्नाध्याय के अन्त में श्लोक संख्या ५८ तथा ६१ में दिया है। उसकी ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक पुष्टि भास्कर पौत्र चङ्गदेव के शक ११२८ में लिखे एक शिलालेख से होती है जिसका सविस्तार वर्णन Epigraphia InoQica Vol-I, P.340, ff में किया गया है। तदनुसार शालिवाहन-शक वत्सर १०३६, ईसवी सन १११४ में भास्कराचार्य का जन्म सह्यपर्वताश्रित विज्जड़विड़ गाँव में शाण्डिल्य गोत्रीय यजुर्वेदीय ब्राह्मण माहेश्वराचार्य के घर हुआ था। अपनी उम्र के ३६वें वर्ष में अर्थात् शक वत्सर १०७२, ईसवी सन ११५० में सिद्धान्त शिरोमणि (खगोलीय ग्रन्थ) की रचना की। इस ग्रन्थ रचना के एक वर्ष बाद ३७वें वर्ष में अर्थात् शकवत्सर १०७३, ईसवी सन् ११५१ में मन्दस्पष्ट चन्द्र के वैषम्य को दूर कर दृग्गणितैक्यता लाने हेतु "बीजोपनय" नामक लघुग्रन्थ की रचना की। मन्दस्पष्ट चन्द्र में दो भिन्न प्रकार के चर बीजफल का संस्कार करने की प्रक्रिया का वर्णन इस बीजोपनय नामक लघुग्रन्थ में दिया गया है।

लिप्ता विधोरर्कमहीमिता मे दृग्गोचराः प्रत्यहमीक्षितस्य।
कदम्बगोलागतसूत्रपाते क्रान्तौ धनर्णत्वजुषो भमध्यात्॥ ८॥

वासनाभाष्य–अथेदानीं चन्द्रस्फुटे स्वोपलब्धं परमवैषम्यमाह। लिप्ताविधोरिति। अर्कमही मिता (११२′) लिप्ताः द्वादशाधिकशतलिप्ताः द्विपञ्चाशत्कलाधिक एको भाग इत्यर्थः।

समसूत्रध्रुवसूत्रयोः व्यावर्तनायाह कदम्बेति। धनर्णत्वजुष इति कदाचिदेतावत्यो धनकलाः कदाचिच्च ता एव ऋणकलाश्च दृष्टा इत्यर्थः। कथमिदं दर्शनम् एवं क्रान्तिवलये स्फुटाधिकारोक्त मन्दफलसंस्कारेण तात्कालिकीकृत्य स्फुटीकृतस्य विधोः करणागतं यत् स्थानं तत्स्थानात् पश्चिमदिशि पूर्वोक्त ऋणकलान्तरिते स्थाने ऋणबीजफलस्य परमोपचया-वस्थायां चन्द्रो दृश्यः। धनबीजफलपरमोपचयावस्थायां तु क्रान्तिवलये करणागतस्थानात् तावत्कलान्तरितप्राग्देशपतितकदम्बसूत्रे चन्द्रो दृश्य इत्यर्थः। तत्रैव भमध्यस्य स्थितत्वात्। एतेन उच्चसूत्र एव वेधनं कृतमिति ज्ञापितम्।

भाषा–प्रतिदिन अवलोकित चन्द्र में ११२ कला (१°।५२') का धन-ऋणात्मक अन्तर नक्षत्रकक्षा-केन्द्र से क्रान्तिवृत्त में कदम्बप्रोत-वृत्तीय सूत्र पर मुझे दृष्टिगोचर हुआ।

विज्ञानभाष्य–चन्द्र-मध्यमगति एवं अहर्गण के द्वारा निर्मित अंशात्मक मध्यम चन्द्र में मन्दफल का ऋणात्मक अथवा धनात्मक संस्कार करने पर अंशात्मक मन्दस्पष्ट चन्द्र होता है। परन्तु उक्त गणितागत चन्द्र वेधवलय और क्रान्तिवृत्त सम्पात पर उतने ही अंशों पर नहीं दिखाई देता। आकाश में नक्षत्रों के बीच में चन्द्र की अंशात्मक स्थिति, गणितागत स्थिति से अधिक या कम प्राप्त होती है। ग्रहबिम्बकेन्द्रगत कदम्बप्रोत वृत्त वेधवलय होता है। यह वेधवलय क्रान्तिवृत्त को जहाँपर स्पर्श करता है उस क्रान्तिवृत्तीय स्थान को ग्रह का स्थान कहते हैं। चूँकि चन्द्र की अंशात्मक स्थिति का मापन क्रान्तिवृत्त पर किया जाता है।अतः चन्द्रबिम्बकेन्द्रगत कदम्बप्रोत वृत्त क्रान्तिवृत्त पर लम्बवृत्त होने के कारण इस वृत्त का और क्रान्तिवृत्त का सम्पातबिन्दु ही स्पष्टदृश्य चन्द्रस्थान होगा। इस अंशात्मक स्पष्टदृश्य चन्द्रस्थान को जब चन्द्र कक्षावृत्त पर परिणमित करते हैं तब अंशात्मक स्पष्टदृश्य चन्द्र प्राप्त होता है।

क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव को कदम्ब कहते हैं और यह कदम्ब क्रान्तिवृत्त का पृष्ठीय केन्द्र है। यह कदम्ब-बिन्दु पार्थिव ध्रुव बिन्दु की सीध में आकाशस्थ ध्रुवतारा के चारों ओर परमक्रान्ति (Obliquiti) तुल्य अन्तर पर परिक्रमित होता रहता है। इस कदम्बबिन्दु से चन्द्रबिम्ब-केन्द्रगत वृत्त का और क्रान्तिवृत्त का जिस स्थान विशेष अथवा क्रान्तिवृत्तीय अंश विशेष पर स्पर्श होगा उस स्थान पर स्थित अंशात्मक चन्द्र से गणितागत चन्द्र धन-ऋणात्मक मान में न्यूनाधिक दृश्य होता है। गणितागत चन्द्र और वेधकाल में आकाश में दृश्य चन्द्र के अन्तर को चन्द्रवैषम्य (चन्द्र की विषमता) कहा गया है। इस चन्द्रवैषम्य का परम (सर्वाधिक) मान ११२ कला (१° / ५२') प्राप्त होता है। यह परममान धनात्मक और ऋणात्मक दोनों ही होता है। नक्षत्रकक्षा केन्द्र पर उक्त परम वैषम्य मान के तुल्य अंशात्मक कोण अन्तरित होता है। चूँकि नक्षत्र कक्षावृत्त केन्द्र पर ही भूकेन्द्र भी स्थित है अतः चन्द्रवैषम्य का धन-ऋणात्मक कोणीय परममूल्य भी भूकेन्द्रीय ही होगा। अर्थात् गणितागत चन्द्रस्थान तक कल्पित भूकेन्द्रीय रेखा के द्वारा क्रान्तिवृत्त एवं कदम्बप्रोतवृत्त सम्पातस्थ वास्तव चन्द्रकेन्द्रस्थान तक भूकेन्द्र पर अन्तरित अंशात्मक परमकोण। अब चन्द्रवैषम्य का सर्वाधिक प्रमाण कहाँपर होगा इसपर नीचोच्च छेद्यक के अनुसार विचार करेंगे।

भूकेन्द्र से चन्द्रकक्षावृत्त का सर्वाधिक दूरस्थ बिन्दु चन्द्र उच्च बिन्दु होता है। इस बिन्दु से छः राशि (१८०°) के अन्तराल पर नीच बिन्दु होगा। उच्च बिन्दु से नीच बिन्दु तक कल्पित रेखा नीचोच्च रेखा अथवा सूत्र होती है। इस रेखा पर चन्द्रकक्षावृत्त का केन्द्र भी

स्थित है। परन्तु इस केन्द्र पर भूकेन्द्र अवस्थित नहीं है अपितु नीचोच्च रेखा पर चन्द्रकक्षा केन्द्र से परममन्दफल तुल्य दूरी पर नीच बिन्दु की ओर भूकेन्द्र स्थित है। यही स्थिति सूर्य और पृथ्वी के मध्य भी है। चन्द्रनीचोच्च रेखा पर लम्बरूप तिर्यक् रेखा, जो कि मन्दप्रतिवृत्त केन्द्र से होकर जाएगी, चन्द्रप्रतिवृत्त की द्वितीय व्यास रेखा होगी। कक्षावृत्त केन्द्रगत लम्बरूप तिर्यक् व्यास रेखा प्रथम व्यास रेखा है। यह द्वितीय व्यास रेखा प्रतिवृत्त को दो स्थानों पर स्पर्श करेगी। यह दोनों स्पर्शबिन्दु चन्द्र उच्च बिन्दु से ९० अंशों की समान दूरी पर होते हैं। यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिए कि चन्द्रकक्षा, मन्दप्रतिवृत्त या चन्द्रप्रतिवृत्त एक ही वृत्त की संज्ञा हैं तथा भूकेन्द्र से त्रिज्या व्यासार्ध द्वारा निर्मित वृत्त की मात्र कक्षावृत्त संज्ञा है।

कक्षावृत्त केन्द्रगत तिर्यक् रेखा प्रतिवृत्त पर जहाँ स्पर्श करेगी वह बिन्दु चन्द्र उच्चबिन्दु से ९० अंश से परम मन्दफलांश तुल्य अधिक दूरी पर होगा। अर्थात् ९० अंश और परम मन्दफलांश के योग तुल्य दूरी पर होगा। इस बिन्दु पर चन्द्र की मध्यमगति ही स्पष्टगति होती है। इसको इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि कक्षाकेन्द्रगत तिर्यक् रेखा और प्रतिवृत्त सम्पातबिन्दु पर चन्द्र मध्यम गति ही स्पष्टगति होती है और चन्द्रमन्दफल सर्वाधिक होता है। यह मन्दफल शून्य अंश से १८० अंशों तक अर्थात् मेषादि चन्द्रकेन्द्र होने पर ऋण तथा १८० अंश से ३६० अंशों तक अर्थात् तुलादि चन्द्रकेन्द्र होने पर धन होता है। चन्द्रमन्दफल में सूर्य के सम्यक् आकर्षणवशात् धन-ऋणात्मक विकार उत्पन्न होता है और इसी आकर्षण के कारण चन्द्रोच्च और चन्द्रमध्यमगति में भी विषमता आती है। यह गतिवैषम्य चन्द्रमध्यमगति, चन्द्रोच्चगति तथा सूर्य की मध्यमगति के परस्पर योग-वियोग से प्राप्त किया जाता है। अतः चन्द्रवैषम्य का साधन भी इन्हीं तीनों की स्पष्ट मध्यमस्थिति के योग-वियोग से ही करना चाहिए। सूर्याकर्षण जनित चन्द्रवैषम्य को भास्कराचार्य ने प्रथम चरबीजफल के रूप में पठित किया है जिसका सर्वाधिक प्रमाण (परमता) ७८ कला है तथा सूर्य और पृथ्वी के संयुक्ताकर्षण जनित चन्द्रवैषम्य को द्वितीय चरबीज के रूप में पठित किया है जिसका सर्वाधिक प्रमाण ३४ कला है।

इस प्रथम चरबीजफल का धन-ऋणात्मक मान परममन्दफल की तरह ही शून्य से १८० अंशों तक प्रथम चरकेन्द्र होने पर ऋण तथा १८० अंशों से ३६० अंशों तक चरकेन्द्र होने पर धन होगा। अत एव जिस बिन्दु पर परममन्दफल सर्वाधिक होगा वहीं पर आकर्षण जनित चन्द्रवैषयम्य का प्रथम चरबीज फल भी सर्वाधिक होगा। चूँकि प्रथम एवं तृतीय पद के अन्त में मन्दफल सर्वाधिक होता है तथा आकर्षण जनित विकार भी इसी परममन्दफल में होता है अतः प्रथम परमचरबीज (७८ कला) भी उक्त पदान्त पर ही होगा। इसकी वेधोपलब्धि चन्द्रकक्षा तथा नीचोच्च रेखासम्पातरूप उच्चबिन्दु से ही प्राप्त होती है क्योंकि प्रथम पदारम्भ उच्चबिन्दु से ही होता है और प्रथम चरबीजरूप वैषम्य की प्रवृत्ति भी उच्चबिन्दु से ही होती है। अतः प्रथम चरबीजफल ७८ कला तथा द्वितीय चरबीजफल ३४ कला का बीजगणितीय योग करने पर ११२ कला प्राप्त होती है। इस विषय का विस्तृत विवेचन आगे के श्लोक में विज्ञानभाष्य के द्वारा करेंगे।

वैषम्यं करणदृशोस्तदेतदन्ये शीघ्रोच्चात्तुहिनकरस्य वर्णयन्ति।
तत्तावद्भवति हि मुग्धजल्पितं यत् सूर्याद्यै रविशशिनोर्निषिद्धमेतत् ॥ ९॥

वासनाभाष्य—अथेदानीमस्य वैषम्यस्य चन्द्रशीघ्रोच्चप्रयुक्ततामुररीकृतवतो "मल्लभट्टस्य" मतमुपक्षिपति। वैषम्यं करणेति। "मान्दं कर्मैकमर्केन्द्वो:" इति स्फुटोध्यायं भगवता सूर्यांशपुरुषेणैव सूर्यचन्द्रयोः शीघ्रकर्मादिनिषेधात मुग्धजल्पितमिति। शिष्टं स्पष्टम्।

भाषा—करणग्रन्थान्तर्गत चन्द्रस्पष्ट गणित में इस वैषम्य को देखकर किसी अन्य विद्वान् (मल्लभट्ट) ने चन्द्रमा का भी शीघ्रोच्च होता है, ऐसा वर्णन किया है। यह उनका मूर्खतापूर्ण कथनमात्र ही है। जबकि यह समझते हुए कि सूर्यांश पुरुष ने भी चन्द्र के शीघ्रोच्च का अभाव होने के कारण शीघ्रकर्म का निषेध किया है[1]।

चन्द्रमा का शीघ्रोच्च क्यों नहीं होता, इसका तथ्यपरक कारण भास्कराचार्य ने अग्रिम श्लोक में बतलाया ही है। अतः इस सन्दर्भ पर भाष्यलेखन-प्रयास व्यर्थ है।

मन्दोच्चनीचयोर्यद्वत् बिम्बव्यासाल्पताधिकम्।
उपलभ्येत शीघ्रस्य सद्भावे तन्न दृश्यते ॥ १० ॥

वासनाभाष्य—अथ तन्मतस्योपपत्तिविरोधमप्याह मन्दोच्चेति। स्पष्टम्। अयमत्र बिम्ब-व्यासवेधनक्रमः। अतिदीर्घान्तां मृण्मयीं यष्टिकां कृत्वा तदन्तः नलिकां काञ्चित निवेशयेत। तच्च दीर्घीकरणार्थं स्यात्। तां च नलिकां स्थूलाक्षमध्यरन्ध्रप्रोतां कृत्वा द्वयाधारयष्टिस्थितां स्थापयेत्। तन्नलिकाया एकपार्श्वे दृष्टिं विधाय अन्तः सुषिरेण ग्रहं पश्येत्। यदि नलिकापररन्ध्रव्यासात् ग्रहबिम्बव्यासाधिक्यम्, तदा क्षुद्रनलिकामन्तर्निखाय लघूकृत्य साम्यमापादयेत। यदि च रन्ध्रव्यासाधिक्यम्, तर्हि क्षुद्रनलिकां बहिरुद्घाट्य दीर्घी कुर्यात् यथा साम्यं भवति एवं प्रथमदिने साम्यं वेधयित्वा द्वितीयदिने तस्मिन्नेव काले वेधयेत्। तदा च वृद्धिह्रासौ स्पष्टमीक्ष्यते। तत्कालाद्यानयनादिकं पूर्वमेवोक्तम्। एवं परीक्षायां विधोः मन्दोच्चनीचस्थानव्यतिरिक्तस्थलेषु बिम्बह्रासवृद्धिसाम्यानुपलम्भात् तस्य शीघ्रोच्चाभावः सिध्यति इति मल्लभट्टस्य मतमनुपपन्नमेव।

भाषा—जिस प्रकार मन्दोच्च तथा नीच पर बिम्बव्यास में न्यूनाधिक्यता प्राप्त होती है उस प्रकार से चन्द्र शीघ्रोच्च सम्भव होने पर वह न्यूनाधिक्यता मन्दनीचोच्चपरा नहीं दिखेगी।

विज्ञानभाष्य—पूर्व में कहा जा चुका है कि भूकेन्द्र से चन्द्रकक्षा का सर्वाधिक दूरस्थ बिन्दु चन्द्रमा का उच्च तथा सर्वाधिक निकटस्थ बिन्दु चन्द्रनीच कहलाता है। प्रतिवृत्तीय उच्चस्थान पर स्थित चन्द्रबिम्ब भूकेन्द्र से सर्वाधिक दूरी पर होने के कारण भूपृष्ठस्थित द्रष्टा को छोटा तथा प्रतिवृत्तीय नीचस्थान पर स्थित होने पर भूपृष्ठस्थित द्रष्टा को बड़ा दिखाई पड़ता है। चन्द्रबिम्ब की यह न्यूनाधिकता द्रष्टा के दृष्टिपथ में आने वाली प्रतीतिमात्र है। वास्तव में चन्द्रबिम्ब का योजन प्रमाण न्यूनाधिक नहीं होता।

भूकेन्द्र से चन्द्रबिम्बकेन्द्र तक एवं चन्द्रबिम्बकेन्द्रगत बिम्बव्यासान्त बिन्दु तक कल्पित रेखा भूकेन्द्र पर कोण अन्तरित करती है। चन्द्रबिम्बकेन्द्र तक कल्पित भूकेन्द्रीय रेखा चन्द्रकक्षा व्यासार्ध है तथा इसे भूगर्भसूत्र भी कहते हैं। उक्त कोणीयान्तर चन्द्रबिम्ब

---

१. सूर्यसिद्धान्तोक्त शीघ्रकर्मनिषेध द्योतक श्लोक विवेचना सहित इस प्रकार है—

मान्दं कर्मैकमर्केन्द्वो भौमादीनामथोच्यते। शैघ्र्यं मान्दं पुनर्मान्दं शैघ्र्यं चत्वार्यनुक्रमात् ॥

अर्कचन्द्रयोरेकं मान्दमेव कर्म। रविचन्द्रयोः स्फुटत्वं सकृन्मन्दफलेनैवेत्यर्थः। अथ भौमादीनां स्फुटत्वमुच्यते। प्रथमं शैघ्र्यं ततो मान्दं ततः पुनर्मान्दं ततः पुनः शैघ्र्यमिति चत्वारि एकानन्तरमपरमनुक्रमाद्देयानि।

का कला विकलात्मक (रेडियन) प्रमाण होता है जिसे बिम्बव्यासकला कहते हैं। जैसे-जैसे कक्षाव्यासार्ध का त्रिज्या प्रमाण बढ़ता जाता है वैसे-वैसे भूगर्भसूत्रद्वयान्तरवर्ती कोणीय मान घटता जाता है और द्रष्टा के दृष्टिपथ में चन्द्रबिम्ब का मान छोटा होता दिखाई पड़ने लगता है। जैसे-जैसे कक्षाव्यासार्ध का त्रिज्या प्रमाण घटता जाता है वैसे-वैसे भूगर्भसूत्रद्वयान्तवर्ती कोणीयमान बढ़ता जाता है और द्रष्टा के दृष्टिपथ में चन्द्रबिम्ब का मान बड़ा होता दिखाई पड़ने लगता है। त्रिज्यातुल्य कक्षाव्यासार्ध होने पर न्यूनाधिक चन्द्रबिम्बकला मान के योगार्ध तुल्य मध्यम प्रमाण में चन्द्रबिम्ब दिखाई पड़ता है। अतः उच्चस्थान स्थित चन्द्रबिम्ब छोटा तथा नीचस्थान स्थित चन्द्रबिम्ब बड़ा दीखता है[१]। प्रतिदिन चन्द्रबिम्बव्यास का नलिकावेध करने पर भी उपर्युक्त बिम्ब ह्रास-वृद्धि चन्द्रोच्च तथा चन्द्रनीच स्थान के अतिरिक्त अन्य स्थान पर उपलब्ध नहीं होती है।

अन्य ग्रहों की बिम्ब ह्रास-वृद्धि शीघ्र नीचोच्च स्थान पर होती है यदि चन्द्रमा का भी शीघ्रनीचोच्च होता तो उसके बिम्ब की ह्रास-वृद्धि मन्दोच्चनीच स्थान पर कदापि उपलब्ध नहीं होती। सिद्धान्त ग्रन्थों में परम इनान्तर को ही शीघ्रफल कहा गया है। इस परमेणान्तरकालीन ग्रहबिम्ब की स्वकक्षागत भूकेन्द्रीय रेखा और ग्रहकक्षा का सर्वातिदूरस्थ सम्पातबिन्दु शीघ्रोच्च बिन्दु होता है। ऐसा कोई भी स्थान चन्द्रकक्षा पर नहीं है क्योंकि चन्द्रमा पूर्णतः भूकेन्द्राभिप्रायिक कक्षा में ही परिक्रमित होता है। परन्तु अन्य ग्रहपरिक्रमण सूर्यकेन्द्राभिप्रायिक भी है[२]। जैसा कि भास्कराचार्य ने सिद्धान्त शिरोमणि, मध्यमाधिकार में ग्रहों को रविमण्डलान्तिक ग्रह कहा है। अतः मल्लभट्ट कल्पित चन्द्र शीघ्रोच्च पूर्णतः त्रुटिपूर्ण व अवास्तविक है।

शीघ्रोच्चनीचौ भवति हि येषां तेषां तु वक्रागतिरीक्ष्यते हि।
नैषोपलब्धा शशिनः कदाचित् केनास्य शीघ्रं सुधियाभ्युपेयम् ॥ ११ ॥

वासनाभाष्य—अथान्यदाह शीघ्रोच्चेति। स्पष्टम्।

भाषा—जिन ग्रहों का शीघ्रोच्च और शीघ्रनीच होता है उन ग्रहों की वक्रगति निश्चय ही दिखाई पड़ती है। चन्द्र में यह कभी भी उपलब्ध नहीं हुई। किस विद्वान के द्वारा इसका शीघ्रोच्च प्राप्त हुआ है? अर्थात् कोई भी विद्वान चन्द्रशीघ्रोच्च को नहीं कहा है।

प्रागुदयोऽपि च पश्चादस्तगतिश्चापिभानुवच्छशिनः।
नैवकुजादिवदिष्टा दृष्टा वा तत् कुतो हि शीघ्रोच्चम् ॥ १२ ॥

मन्दमात्रस्फुटोभानुशुद्धः स्फुटः कालभेदाद्यथाबीजतोभिद्यते।
तद्वदेवैषपीयूषभानुस्फुटोभिद्यते बीजते नान्यथावीक्ष्यताम् ॥ १३ ॥

---

१. सिद्धान्तशिरोमणि, छेद्यकाधिकार, २२.
उच्चस्थितो व्योमचरः सुदूरे नीचस्थितः स्यान्निकटे धरित्र्या।
अतोऽणुबिम्बः पृथुलश्च भाति भानोस्तथासन्न सुदूरवर्ती ॥ २२ ॥ —भास्कराचार्यः।

२. **कल्पजचक्रहतास्तुगताब्दाः कल्पसमाविहृता भगणाद्याः।**
स्युर्ध्रुवकादिनकृद्गणान्ते पातमृदूच्चचलोच्चखगानाम् ॥ (सि. शि., म. अ., प्र. शु., ९.)
अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन—यदि कल्पवर्षैः कल्पभगणाः लभ्यन्ते तदागतैः किमिति-फलं रविमण्डलान्तिका ग्रहा भवन्ति।
रविमण्डलान्तिक ग्रह का तात्पर्य है, सूर्यकेन्द्रीय कक्षावृत्तस्थ ग्रह।

वासनाभाष्य—अथेदानीं कुत इदं फलवैषम्यं ज्ञातमित्यपेक्षायामाह मन्दमात्रेति। स्पष्टम्।

भाषा—सूर्य की तरह चन्द्र का पूर्व दिशा में उदय भी होता है और पश्चिम दिशा में अस्त भी होता है। भौमादि ग्रहों का सूर्य सान्निध्यवशात् होने वाले लोपदर्शन की तरह चन्द्रमा न तो दृश्य होता है और न ही ऐसा अभीष्ट माना गया है। अत एव चन्द्रशीघ्रोच्च कहाँ से उत्पन्न हो सकता है?

मन्दफल के धनर्ण संस्कार मात्र से स्पष्ट होने वाला सूर्य जिस प्रकार कालभेद से अर्थात् कालान्तरजन्य बीजफल से संस्कृत होकर शुद्धस्पष्ट हो जाता है उसी प्रकार यह चन्द्र मन्दफल से और चरबीजफल से संस्कृत (भिद्य) होकर ही स्पष्ट होता है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी संस्कार की अपेक्षा न करें।

विज्ञानभाष्य—वेधयन्त्रों पर सूर्य चन्द्र के स्पष्ट सायन भोगांश भूपृष्ठीय प्राप्त होते हैं। इसमें लम्बनादि का विपरीत संस्कार करने पर यह भूकेन्द्रीय हो जाता है। मध्यम सूर्य के भोगांश में कालान्तरजन्य (स्थिरबीज) संस्कार तथा मन्दफल का धनात्मक एवं ऋणात्मक संस्कार करने मात्र से ही मध्यम सूर्य के भोगांश स्पष्ट भोगांश के रूप में प्राप्त हो जाते हैं। परन्तु चन्द्रमा के भोगांश में कालान्तरजन्य संस्कार और मन्दफल का धन-ऋणात्मक संस्कार करने मात्र से दृश्य स्पष्ट भोगांश नहीं प्राप्त होते। क्योंकि वेधयन्त्र से प्रेक्षित चन्द्र के भोगांश और मन्दफल कालान्तरजन्य संस्कार से परिष्कृत गणितागत चन्द्र में अन्तर प्राप्त होता है। यह अन्तर आगे कहे गए अनुसार चरबीजफलद्वय का संस्कार करने पर समाप्त हो जाता है और गणितागत स्पष्ट सायनचन्द्रतुल्य ही वेधागत अर्थात् वेधयन्त्रों के द्वारा प्राप्त स्पष्ट सायनचन्द्र हो जाता है।

तयोर्यथा बीजमुशन्ति लोके फलस्य जन्यं जनकं च तद्वत्।
अत्रापि दैवज्ञगणागुणेन सादृश्यतो बीजमुशन्ति बीजम् ॥ १४॥
यत्कारणं बीजमिदं स्थिरं स्यात्तच्छास्त्रगम्यं समयेषु योज्यम्।
यत्कार्यबीजं चरमे तदाहुस्तत्संस्क्रिया सा सुधियावगम्यम् ॥१५॥

वासनाभाष्य—अथेदानीं बीजकर्म द्वेधा विभज्य तल्लक्षणमाह। तयोर्यथा बीजमिति। बीजसादृश्यादत्र बीजव्यवहारः। तच्च द्विविधम्। स्थिरं चरं चेति। सामान्यतो विशेषतश्च। शास्त्रैकसाध्यत्वं स्थिरलक्षणम्। सामान्यतः शास्त्रावगतत्वे सति विशेषतो दृक्साध्यत्वं चरलक्षणमिति विवेकः। शिष्टं स्पष्टम्। सामान्यलक्षणं तु कालविशेषानियतदृक्कर्म-वैषम्यापादकत्वं बोध्यम्।

भाषा—किसी भी फल (उपलब्धि) में जन्य-जनकताभाव होता है अर्थात् किसी भी उपलब्ध पदार्थ (अल्पता या न्यूनता) का कोई न कोई कारण होता है। अत एव रवि, चन्द्र के स्पष्टीकरण में अन्तर का कारण लोक व्यवहार में बीजसंज्ञा से अभिहित होता है। इसलिए दैवज्ञजन बीज के सदृश व्यवहार होने से इस संस्कार को "बीज" कहते हैं। स्थिर बीज की उत्पत्ति में जो कारण हैं उनका शास्त्र ही प्रमाण है जो यथासमय प्रयोजनीय है। जो तात्कालिक कार्य के लिए उपयुक्त होता है वह संस्कार अन्त में किया जाता है जिसके कारण उसकी संज्ञा चरबीज अथवा चरमबीज है। इस संस्कार का विद्वज्जन द्वारा आनयन किया जाता है।

बीजं हि नैजाङ्कुरशक्तियुक्तं स्वशक्तिमात्रेण यथा कुसूले।
तथा स्थिरं तिष्ठति निर्विकारं कदाचिदेति प्रपुलं विकारम् ॥ १६॥

वासनाभाष्य–अथेदानीं स्थिरस्यापि बीजत्वे विरोधाभावमाह बीजं हीति। स्थिरं बीजं कालविशेषे मन्दफलादिहेतुभूतं सत् वैषम्यापादकं स्वतोऽपि भवति। कालविशेषेषु च कुसूलस्थबीजवत् निर्विकारतयैव स्थितत्वात् फलान्तरार्थमपि न भवति। स्वतोऽपि वैषम्यं नापादयति। किन्तु शास्त्रैकवेद्यतया शक्तिरूपेणैवावतिष्ठते। तस्मात् स्थिरत्वबीजत्वयोः विरोध इति भावः। अत्र उपलब्धिरेव वासना।

भाषा–स्थिरबीज की तूलना प्राकृतिक वानस्पतिक बीज से करते हुए आचार्य भास्कर कह रहे हैं कि जिस प्रकार गुठली के भीतर स्थित बीज अङ्कुरणशक्ति से युक्त होता है और वह निर्विकार रूप से उस छिलके के अन्दर रहता हुआ किसी भी समय (जल एवं मृत्तिकादि संयोग से उचित ऋतु में) प्रस्फुटित हो जाता है, ठीक उसी प्रकार ग्रहस्पष्टीकरण हेतु निर्धारित स्थिरबीज प्रमाण निर्विकार पड़ा रहता है और वह कभी-कभी विपुल मात्रा में दृश्य हो जाता है, अर्थात् विकार को उत्पन्न करता है।

यदा चरं बीजमुपैति योगं तदा स्थिरं तत्प्रतिबन्धशक्तिः।
यदा स्थिरं योगमुपैति बीजं तदाचरं नाशयतीति मन्ये ॥ १७॥

वासनाभाष्य–यथेदानीं तं कालविशेषं स्वोपलब्धेन केनचिदवच्छेदकेन निरुपयन्नाह यदा चरमिति। यदा स्थिरं बीजं स्वकार्यतो दृग्योगमुपयाति तेन चरबीजं स्वरूपत एव नाश्यते। अतोऽस्य चरत्वं कालविशेषाभावत्वं च। यदा चरबीजमुत्पन्नं स्वकार्यतो दृग्योगं भजते, तदा स्थिरं बीजं तेनैव प्रतिबद्धशक्तिकं स्वरूपमात्रेणावतिष्ठते। न कार्यकरं भवति। अतोऽस्य स्थिरबीजत्वम्। एतदुक्तं भवति। आगमेषु स्थिरबीजमात्रस्य विशिष्याम्नानात् कृतयुगान्ते स्थिरबीजमेवोपलब्धमिति निश्चीयते। चरबीजस्य तु तदा रविचन्द्राभ्यां विस्रंसनं भविष्यतीति भविष्यत्वेनैवोक्तत्वाच्चरबीजं तदानीं नासीदिति च निर्णीतम्। अस्मत्परीक्षाकाले तु स्थिरबीजं नोपलभ्यते। तत्संस्कृतग्रहानीतग्रहणग्रहयुद्धादीनां दृग्विसंवादात्। भविष्यत्त्वेन सामान्येन यदुक्तं चरबीजं तदेवेदानीमुपलभ्यते। तत्संस्कृतग्रहानीतग्रहणादीनामेव दृक्तुल्यत्वात्। अतोऽनयोः परस्पर विरोधावगमात् अनयोरेकाभावकाले अपरस्य प्रवृत्तिरितिनिश्चीयत इति। अत्र मन्ये इत्यनेन स्वनिर्णयस्याविश्वसनीयता सूचिता। ततश्चानन्तरकालिकैरिदं परीक्ष्यैव विश्वसनीयमिति दर्शितम्। यतोऽस्मिन् शास्त्रे तत्रापि बीजकर्मण्युपलब्धिरेव प्रमाणम्। तत् एतत् परीक्ष्यैव ग्राह्यमिति भावः।

भाषा–जब स्थिरबीज संस्कृत ग्रह दृक्तुल्य हो जाता है तब चरबीज की आवश्यकता नहीं होती। वह स्वतः ही निष्प्रयोज्य हो जाता है। उसी प्रकार जब चरबीज के द्वारा ग्रह दृक्तुल्यता को प्राप्त हो जाता है तब स्थिरबीज निष्प्रयोज्य हो जाता है।

स्थिरं तु बीजं फलहेतुभावान्मध्याधिकारे हि पुरा मयोक्तम्।
चरस्य बीजस्य फलोत्थितत्वाच्छिष्टं तदेवेह निरूपणीयम् ॥ १८॥

बीजं चरं यद्रविचन्द्रमान्दस्फुटद्वयापेक्षमिहेष्यमाणम्।
मध्याधिकारे नहि तत् प्रवक्तुं कर्तुं च शक्यं तदिहोच्यते तत् ॥ १९॥

वासनाभाष्य–अथेदानीं चरबीजस्यैवात्र वक्तव्यत्वे हेतुमाह स्थिरन्त्विति। स्पष्टम्।

भाषा–पूर्व में ही मध्यमाधिकार में मैंने फलोपलब्धि की अनिवार्यता हेतु स्थिरबीज को कहा है। यहाँ पर मन्दफल से उत्पन्न होने वाले चरबीज के अवशिष्ट भाग को निरूपित करूँगा। चूँकि चरबीज फल को प्राप्त करने के लिए मन्दस्पष्ट सूर्य और चन्द्र दोनों ही

अपेक्षित होते हैं जिसको मध्यमाधिकार में कह पाना या कर पाना सम्भव नहीं है इस लिए यहाँ उसे कहते हैं।

तुङ्गादाद्यपदान्तस्थात् विधोरर्के पदार्द्धतः।
परमं चन्द्रवैषम्यमृणत्वेन समीक्ष्यते ॥ २० ॥

तत्तृतीयपदान्तस्थात् पृष्ठगेऽर्के पदार्द्धतः।
परमं चन्द्रवैषम्यं धनत्वेन समीक्ष्यते ॥ २१ ॥

चन्द्रतुङ्गे च नीचे च शशाङ्कार्कग्रहौ यदि।
मन्दस्फुटगतश्चन्द्रो निर्बीजस्तुल्यमीक्ष्यते ॥ २२ ॥

ओजान्तयोर्विधोस्तुङ्गाच्छशाङ्कार्कग्रहौ यदि।
चतुस्त्रिंशत्कलाहीनं वैषम्यं तु समीक्ष्यते ॥ २३ ॥

अग्रतः पृष्ठतो वापि रवेश्चन्द्रे पदार्द्धगे।
तुङ्गतुल्ये चतुस्त्रिंशत्कलावैषम्यमीक्ष्यते ॥ २४ ॥

एवं तन्नीचतुल्येऽपि वैषम्यं तावदेव हि।
एवं व्यासात्समासाच्च पौनः पुन्येन वेधनात् ॥ २५ ॥

चरबीजमिदं क्लृप्तं मयासद्भिः समीक्ष्यताम्।

वासनाभाष्य—अथेदानीं स्वाभिमतचरबीजसंस्कारावक्लृप्तिमूलभूतान् स्वोपलम्भप्रकारानाह। तुङ्गादाद्यपदान्तस्थादिति। अत्र हि चन्द्रचरबीजे क्रियाद्वयं वर्तते। एकक्रियायां परमफलमष्ट-सप्ततिकलाः। अपरत्र च चतुस्त्रिंशत्कलाः। उभयोः केन्द्रवशाद्यत्र धनर्णसाम्येन मेलनं तत्र परमं फलं सद्द्वादशशतकलात्मकं भवति तत्रैव परमं भवति, तत्र व्यस्तयोस्तयोः पृथगुपलम्भः। तत्र प्रथमफलस्य प्रवृत्तिर्निवृत्तिश्च तुङ्गादेव मन्दफलसमानयोगक्षेमा। अनन्तरस्य तु स्फुटसूर्यस्थानादोजे धनं युग्मे ऋणमिति प्रवृत्तिनिवृत्ति उपलभ्येते। अयमेव केषांचित् चन्द्रस्यापि शीघ्रोच्चमस्तीति भ्रमहेतुः। तदिदं सर्वं स्वोपलब्ध्यैव निर्णीतमिति तदुपलम्भप्रकारदर्शनं स्पष्टमेव।

भाषा—चन्द्रोच्च से प्रथम पदान्त (९० अंश) पर स्थित चन्द्रमा से आगे द्वितीय पदार्ध (१३५ अंश) पर सूर्य हो तो ऋणात्मक परमचन्द्र वैषम्य (११२ कला) सम्यक् दिखाई पड़ता है। चन्द्रोच्च से तृतीय पदान्त (२७० अंश) पर स्थित चन्द्रमा से पीछे तृतीय पदार्ध (२२५ अंश) पर सूर्य हो तो धनात्मक परम चन्द्रवैषम्य (११२ कला) सम्यक् दिखाई पड़ता है। चन्द्रोच्च और चन्द्रनीच बिन्दु पर सूर्य-चन्द्र दोनों एक साथ स्थित हो तो बीजरहित मन्दस्पष्ट तुल्य ही चन्द्र दिखाई पड़ता है। यदि चन्द्रोच्च से विषमपदान्तों पर चन्द्र-सूर्य एक साथ हो तो परम चन्द्रवैषम्य (११२ कला) ३४ कला से हीन अर्थात् परम वैषम्य (११२ कला) और ३४ कला के अन्तरतुल्य ही वैषम्य दिखाई पड़ता है। सूर्य के आगे अथवा पीछे पदार्ध पर और उच्च पर चन्द्र के होने से ३४ कला वैषम्य दिखाई पड़ता है। इस प्रकार निश्चित उतना ही वैषम्य (३४ कला) नीचतुल्य चन्द्र होने पर भी होता है। इस प्रकार व्यास और समास से अर्थात् योगान्तर से बार-बार वेध करने पर यह चरबीज मेरे द्वारा उपलब्ध कर निर्णीत किया गया। सज्जन लोग इसपर समीक्षण करें।

विज्ञानभाष्य—चन्द्रमा का परम वैषम्य विषमपदान्तों पर ±११२ कला प्राप्त होता है। इस

परमवैषम्य फल की उपलब्धता दो भिन्न प्रकार के परमवैषम्य फलों के बीजगणितीय योगान्तर पर अवलम्बित हैं। प्रथम क्रिया से परम वैषम्य ±७८ कला तथा द्वितीय क्रिया से परम वैषम्य ±३४ कला प्राप्त होता है। प्रथम वैषम्यफल की प्रवृत्ति-निवृत्ति (आरम्भान्त) चन्द्रोच्च से और द्वितीय वैषम्य फल की प्रवृत्ति-निवृत्ति स्पष्ट सूर्यस्थान से होती है। यह द्वितीय फल स्पष्ट सूर्यस्थान से विषम पदों में धनात्मक तथा समपदों में ऋणात्मक होता है। प्रथम वैषम्य फल की धन-ऋणात्मकता मन्दफल के समान होती है।

मन्दफल हेतु पदों का आरम्भ चन्द्रोच्च बिन्दु से होता है और यहीं से मेषादि केन्द्र की गणना भी प्रारम्भ होती है तथा तुलादि केन्द्र का गणनारम्भ चन्द्रनीच से करते हैं। अतः मन्दकेन्द्राश्रित मन्दफल की प्रवृत्ति-निवृत्ति चन्द्रोच्च और चन्द्रनीच से होगी। **तुलाजादि-केन्द्रे फलं स्वर्णमेवं** इत्यादि भास्करीय वचन प्रमाणानुसार उच्चप्रवृत्त शून्य से १८० अंशों तक मेषादि मन्दकेन्द्र में मन्दफल ऋण होता है तथा १८० अंशों से ३६० अंशों तक तुलादि केन्द्र में मन्दफल धन होता है। चूँकि योज्यान्तरोपयोगी संस्कार फलों की प्रवृत्ति-निवृत्ति और पद प्रवृत्ति-निवृत्ति एक साथ उच्चबिन्दु से होती है इसलिए प्रथम वैषम्यफल तथा मन्दफल दोनों की प्रवृत्ति-निवृत्ति तथा फल की उपलब्धता हेतु पद प्रवृत्ति-निवृत्ति एकसाथ चन्द्रोच्च बिन्दु से होगी और प्रथम वैषम्य फल का धन-ऋणात्मक योज्यान्तर मान मन्दफल के समान ही होगा। अर्थात् मन्दफल के तुलादि केन्द्र में धन होने पर प्रथम वैषम्यफल धनात्मक तथा मन्दफल के मेषादि केन्द्र में ऋण होने पर प्रथम वैषम्यफल ऋणात्मक होगा। द्वितीय वैषम्यफल हेतु पदारम्भ स्पष्ट सूर्य के स्थान से करते हैं। स्पष्ट सूर्य जितने अंशों पर हो उतने अंशों से प्रथम पद प्रारम्भ होगा तथा इसी आरम्भ स्थान से द्वितीय वैषम्यफल की प्रवृत्ति-निवृत्ति भी होगी। स्पष्ट सूर्यस्थान से विषम पदों में मन्दफल और प्रथम वैषम्यफल के संस्कार से युक्त चन्द्र के स्थित रहने पर द्वितीय वैषम्यफल धन तथा समपदों में उक्त चन्द्र के स्थित रहने पर उक्त फल ऋण होगा, जैसा कि भाष्यकारोक्त "स्फुटसूर्यस्थानादोजे धनम्" इत्यादि वचन प्रमाण हैं।

उपर्युक्त धनर्णविचारणोपरान्त अब सकल वैषम्य फल के परमत्व पर विचार करेंगे। इसके लिए सर्वप्रथम इस तथ्य को स्थिर रूप में जान लेना चाहिए कि शून्य से ९० अंश तक प्रथम विषमपद, ९० अंशों से १८० अंशों तक द्वितीय समपद, १८० अंशों से २७० अंशों तक तृतीय विषमपद तथा २७० अंशों से ३६० अंशों तक चतुर्थ समपद होता है। प्रथम पदार्ध पदारम्भ से ४५ अंशों पर, द्वितीय पदार्ध प्रथम पदान्त से १३५ अंशों पर, तृतीय पद का आधा द्वितीय पदान्त से २२५ अंशों पर तथा चतुर्थ पद का आधा तृतीय पदान्त से ३१५ अंशों पर होता है।

चन्द्रोच्च से प्रारम्भ होने वाले प्रथम पद के अन्त में तथा चन्द्रनीच से प्रारम्भ होने वाले तृतीय पद के अन्त में एकभूकेन्द्रीय रेखा पर जब सूर्य-चन्द्र दोनों एक साथ स्थित रहते हैं तब ३४ कला से विहीन वैषम्य उपलब्ध होता है। अर्थात् इन दोनों विषम पदान्तों में परम वैषम्य ११२ कला और ३४ कला के परस्पर अन्तर तुल्य ७८ कला वैषम्य प्राप्त होता है। इस ७८ कला वैषम्य तथा ३४ कला वैषम्य का परस्पर धन-ऋणात्मक बीजगणितीय समायोजन ही ११२ कला तुल्य परम वैषम्य होता है। चन्द्रोच्च से प्रवृत्त प्रथम वैषम्य फल (७८ कला) का परमत्व प्रथम तथा तृतीय पदान्त पर होता है। जब सूर्य, चन्द्र एक साथ इन पदान्तों पर होते हैं। यदि चन्द्रोच्च से प्रवृत्त प्रथम पदान्त पर चन्द्र स्थित हो और इस चन्द्र से आगे द्वितीय पद के आधे पर स्पष्ट सूर्य स्थित हो तो ऐसी स्थिति में चन्द्रमा के मेषादि केन्द्र

में होने के कारण प्रथम वैषम्य फल ऋण ७८ कला होगा तथा स्पष्ट सूर्यस्थान से प्रवृत्त पदों के अन्तिम समपद में चन्द्र के स्थित होने से द्वितीय वैषम्य फल ३४ कला भी ऋण होगा। इन दोनों फलों का बीजगणितीय योग करने पर ऋण ११२ कला परम वैषम्य उपलब्ध होगा। यह प्रथम अवस्था में वैषम्य का परमत्व हुआ। यदि चन्द्रोच्च से तृतीय पदान्त पर चन्द्र स्थित हो और उसके पीछे तृतीय पद के आधे पर स्पष्ट सूर्य स्थित हो तो ऐसी स्थिति में चन्द्र के तुलादि केन्द्र में होने के कारण प्रथम वैषम्य फल धन ७८ कला होगा तथा स्पष्ट सूर्यस्थान से प्रवृत्त पदों के प्रथम विषम पद में चन्द्र के स्थित होने से द्वितीय वैषम्य फल ३४ कला भी धन होगा। इन दोनों फलों का बीजगणितीय योग करने पर धन ११२ कला प्राप्त होगी। यह द्वितीय अवस्था में वैषम्य का परमत्व हुआ।

द्वितीय वैषम्यफल (३४ कला) स्पष्ट सूर्यस्थान से विषमपद में धनात्मक तथा समपद में ऋणात्मक होता है। इसका परमत्व पद के आधे पर होता है। चन्द्रोच्च से प्रथम पद के अन्त में तथा तृतीय पद के अन्त में यह वैषम्यफल शून्य हो जाता है जब सूर्य-चन्द्र दोनों एक साथ उक्त दोनों पदों के अन्तिम बिन्दु पर स्थित हों। इसी प्रकार चन्द्रोच्च और चन्द्रनीच बिन्दु पर भी यह वैषम्यफल उस समय शून्य हो जाता है जिस समय सूर्य-चन्द्र एक साथ चन्द्रोच्च अथवा चन्द्रनीच बिन्दु पर स्थित हों।

चन्द्रोच्च से प्रथम पद के अन्त में चन्द्र स्थित हो और इस चन्द्रस्थिति से आगे द्वितीय पद के आधे पर अर्थात् १३५ अंशों पर अथवा प्रथम पदार्ध (४५ अंश) पर चन्द्र से पीछे यदि सूर्य स्थित हो तो द्वितीय वैषम्यफल का परमत्व ३४ कला के तुल्य होता है। इसी प्रकार चन्द्रोच्च से तृतीय पद के अन्त में चन्द्र स्थित हो और तृतीय पदार्ध २२५ अंशों पर चन्द्र से पीछे अथवा चतुर्थ पदार्ध (३१५ अंश) पर चन्द्र से आगे सूर्य स्थित हो तो द्वितीय वैषम्य फल का परमत्व ३४ कला के तुल्य होता है। यही परमत्व उस अवस्था में भी होगा जबकि चन्द्रोच्च से प्रथम एवं तृतीय पदान्त पर सूर्य स्थित हो और क्रमशः इस सूर्यस्थिति से आगे द्वितीय पदार्ध एवं चतुर्थ पदार्ध पर अथवा उक्त सूर्यस्थिति से पीछे प्रथम पदार्ध एवं तृतीय पदार्ध पर चन्द्र स्थित हो। यह परमत्व की प्रथम अवस्था है।

यदि चन्द्र अपने उच्च बिन्दु पर स्थित हो और इसके आगे प्रथम पदार्ध (४५ अंश) पर अथवा उक्त चन्द्र से पीछे चतुर्थ पदार्ध (३१५ अंश) पर सूर्य स्थित हो तथा इसी प्रकार चन्द्र अपने नीच बिन्दु पर स्थित हो और उसके आगे तृतीय पदार्ध (२२५ अंश) पर अथवा उक्त चन्द्र से पीछे द्वितीय पदार्ध (१३५ अंश) पर सूर्य स्थित हो तो भी द्वितीय वैषम्य फल का परमत्व ३४ कला के तुल्य होता है। इसी प्रकार सूर्य यदि चन्द्रोच्च अथवा चन्द्रनीच स्थान पर हो और चन्द्रमा उक्त सूर्य के आगे अथवा पीछे पदार्ध पर स्थित हो तो भी द्वितीय वैषम्य फल पूर्वोक्तवत् ३४ कला ही होता है। यह परमत्व की द्वितीय अवस्था है। यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिए कि चन्द्रोच्च तथा चन्द्रनीच बिन्दु से होकर जाने वाला कदम्बप्रोतवृत्त सूर्यकक्षा को जहाँ पर काटता है वह स्थान चन्द्रोच्च स्थान तथा चन्द्रनीच स्थान कहा गया है।

चन्द्र के पीछे पदार्ध पर सूर्य के रहने पर यह फल धनात्मक होता है और चन्द्र के आगे पदार्ध पर सूर्य के रहने पर यह फल ऋणात्मक होता है। क्योंकि इस वैषम्यफल की प्रवृत्ति स्पष्ट सूर्य के स्थान से होती है तथा इसके लिए पद का प्रारम्भ भी स्पष्ट सूर्य के स्थान से ही होता है। जिस बिन्दु अथवा पदार्ध पर (चन्द्रोच्च से प्रारम्भ होने वाले पदों के आधे पर)

सूर्य स्थित होगा वहीं से द्वितीय वैषम्यफल हेतु प्रथम पद का प्रारम्भ होगा। यदि सूर्य चन्द्र के आगे पदार्ध पर रहता है तो सूर्यस्थान से चतुर्थ समपदार्ध पर चन्द्र होगा और वैषम्यफल ऋणात्मक होगा। यदि सूर्य चन्द्र के पीछे पदार्ध पर स्थित है तो सूर्य स्थान से प्रथम विषम पदार्ध पर चन्द्र होगा और वैषम्यफल धनात्मक होगा। इस प्रकार क्रमशः आगे भी विभिन्न स्थानों पर सूर्य की स्थित्यानुसार वैषम्य फल का धन ऋणत्व जानना चाहिए। ग्रहों की पूर्वाभिमुख गति के कारण प्रथम द्वितीयपद संयुक्तवृत्त (कक्षावृत्त) पूर्वार्ध में द्वितीय पदार्ध पर सूर्य की स्थिति चन्द्र से आगे तथा तृतीय चतुर्थपद संयुक्तवृत्त (कक्षावृत्त) उत्तरार्ध में तृतीय पदार्ध पर सूर्य की स्थिति चन्द्र से पीछे होगी।

अब उपर्युक्त दोनों वैषम्य फलों के शून्य प्रमाण पर विचार करेंगे।

जब चन्द्रमा अपने उच्चबिन्दु अथवा नीचबिन्दु पर होता है तब मन्द केन्द्रांश क्रमशः शून्य अंश तथा १८० अंश होते हैं। ऐसी स्थिति में केन्द्रज्या शून्य हो जाती है अतः केन्द्रज्यागुणित प्रथम वैषम्य फल भी शून्य हो जाता है। परन्तु इसके लिए सूर्य की स्थिति चन्द्र से १८० अंशों के अन्तराल पर होनी आवश्यक है। अर्थात् यदि चन्द्र अपने उच्च पर हो तो सूर्य को चन्द्रनीच स्थान पर होना चाहिए। यदि सूर्य और चन्द्र उक्त स्थानों के अतिरिक्त स्थानों पर परस्पर १८० अंश के अन्तराल पर स्थित रहते हैं तो ऐसी स्थिति में सूर्य चन्द्रान्तरांश की ज्या शून्य हो जाएगी और द्वितीय वैषम्यफल भी शून्य हो जाएगा। यदि सूर्य-चन्द्र दोनों एक साथ चन्द्रोच्च अथवा चन्द्रनीच बिन्दु स्थान पर रहते हैं तो ऐसी अवस्था में मन्दकेन्द्रांश शून्य होगा और विषमकेन्द्रांश भी शून्य हो जाएगा और सूर्यचन्द्रान्तरांश भी शून्य हो जाएगा अतः इससे उत्पन्न प्रथम वैषम्यफल तथा द्वितीय वैषम्यफल भी शून्य होगा। ऐसी स्थिति में मध्यम चन्द्र ही स्पष्ट चन्द्र होगा। यदि चन्द्र अपने उच्च अथवा नीच बिन्दु पर स्थित हो और चन्द्रोच्च से प्रवृत्त प्रथम पद के अन्त में अथवा तृतीय पद के अन्त में सूर्य स्थित हो तो ऐसी अवस्था में मन्दकेन्द्रांश शून्य होगा तथा विषमकेन्द्रांश भी शून्य होगा। अतः इससे उत्पन्न प्रथम वैषम्यफल भी शून्य हो जाएगा। उपर्युक्त स्थिति में सूर्य चन्द्रान्तरांश ९० अंश प्राप्त होगा जिसके द्विगुणित प्रमाण की ज्या शून्य होगी। चूँकि चन्द्रोच्च से आगे अथवा पीछे पदार्ध पर सूर्य के रहने पर द्वितीय वैषम्यफल सर्वाधिक होता है और परस्पर पदार्ध (४५ अंश) पर स्थित सूर्य-चन्द्र के अन्तरांश को द्विगुणित करने पर ९० अंश प्राप्त होते है जिसकी ज्या त्रिज्यातुल्य होती है अतः पदार्ध पर प्राप्त होने वाला द्वितीय वैषम्यफल का मान त्रिज्यातुल्य अन्तरांशज्या का होगा। इसलिए चन्द्रोच्च से पदान्त पर स्थित सूर्य तथा चन्द्रोच्च पर स्थित चन्द्र के अन्तरांश की द्विगुणित प्रमाण की ज्या ग्रहण करेंगे जिसका प्रमाण शून्य होता है। ऐसी स्थिति में द्वितीय वैषम्यफल भी शून्य ही प्राप्त होगा। यदि चन्द्रोच्च से प्रथमपदान्त पर चन्द्र स्थित हो और सूर्य तृतीय पदान्त पर स्थित हो अथवा चन्द्र तृतीय पदान्त पर स्थित हो और सूर्य प्रथम पदान्त पर स्थित हो तो ऐसी अवस्था में सूर्यचन्द्रान्तरांश की ज्या का प्रमाण शून्य हो जाएगा। अतः द्वितीय वैषम्य फल भी शून्य हो जाएगा।

रसा ६ गुणेन्दू[1] १३ शशिलोचनौ च २१
भूभृतकरौ २७ कालगुणौ ३३ नवत्रिः ३९ ॥ २६

---

१. चरबीजफलों का अन्तरक्रम समान रूप से तृतीय फल से अन्त तक क्रमशः कम होता गया है परन्तु प्रथम, द्वितीय तृतीय चरफल के अन्तर क्रम में विसंगति है। प्रथम द्वितीय के अन्तर ७

(...पृष्ठ–२१)

शराब्धय ४५ **श्चन्द्रशरा** ५१ **रसार्थाः** ५६
पृथ्वीरसाः ६१ **बाणरसा** ६५ **गजाङ्काः** ६८।
शून्याद्रयो ७० **बाहुगिरी** ७२ **च वेद**
तुरङ्गमा ७४ **बाणहया** ७५ **शराश्वाः**[1] ७५ ॥ २७

रसाद्रय ७६ **श्चाङ्कहया** ७६ **हयाश्वा** ७७
हयाद्रयो ७७ **नागहया** ७८ **गजाश्वाः** ७८।
गजाद्रय ७८ **श्चेति फलं ऋणे ऋणं**
धने धनं मन्दफलेन संयुतम् ॥ २८

वासनाभाष्य—अथेदानीं चतुर्विंशतिज्यार्धानां क्रमाच्चरबीजफलपिण्डानाह रसा इति। एतानि ज्याफलानि मन्दज्याफलेषु संयोज्य यथाक्रमं धनर्णभावेन मध्ये संस्कारः कर्तव्य इत्यर्थः।

भाषा—यहाँ पर भास्कराचार्य ने क्रम से मन्दकेन्द्रवैषम्यांशोत्पन्न २४ ज्यार्धों के चरबीजफल पिण्डों को कहा है। मन्द केन्द्रज्या से उत्पन्न उक्त चरबीजफलों को धन-ऋण व्यवस्थानुसार मन्दज्याफलों में संयोजित कर मध्यम चन्द्र में संस्कार करेंगे। २४ चरबीजफल पिण्ड इस प्रकार हैं—

ज्या संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
च.फ. कला	६′	१३′	२१′	२७′	३३′	३९′	४५′	५१′	५६′	६१′	६५′	६८′
ज्या संख्या	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
च.फ. कला	७०′	७२′	७४′	७५′	७५′	७६′	७६′	७७′	७७′	७८′	७८′	७८′

विज्ञानभाष्य—पूर्व में यह बताया जा चुका है कि प्रतिदिन प्रेक्षित चन्द्रमा में तथा गणितागत चन्द्र में ११२ कला का धन-ऋणात्मक अन्तर प्राप्त होता है जिसको व्यास-समास प्रक्रिया से बार-बार प्रेक्षण कर प्राप्त करते हैं। चन्द्रमा के परममन्दफल (उत्केन्द्रिता) में समय-समय पर परिवर्तन दिखाई पड़ता है। यह परिवर्तन कभी गणितागत मान से अधिक और कभी गणितागत मान से कम प्राप्त होता है। मध्यम मन्दफल में प्रथम चर बीजफल को संकलित

कला से द्वितीय तृतीय का अन्तर ८ कला अधिक तथा इससे कम ६ कला का अन्तर तृतीय चतुर्थ में है। वास्तव में यह क्रम ७,८,६ न होकर ८,७,६ इत्यादि होना चाहिए। अतः "गुणेन्दू" पाठ के स्थान पर युगेन्दु पाठ रखने पर यह विसंगति दूर हो जाएगी। "गुणेन्दु" पाठ असमीचीन प्रतीत होता है। इसी प्रकार द्वितीय ज्यानयनसूत्र (२ ज्याके$_1$-फ) में "फ" के स्थान पर २फ रखने पर जो ज्या का प्रमाण होगा उससे चरफल प्रमाण १४ कला उपलब्ध होता है। ज्या सारणी संख्या एक में भी प्रथम ज्या से चतुर्थ ज्याके मध्य की अन्तर कला में क्रमतारतम्य नहीं है। द्वितीय ज्या के स्थान पर २ ज्याके$_1$-२फ रखने पर क्रमतारतम्य उपलब्ध हो जाता है और चरफलान्तर क्रम में भी युक्ति संगत बैठता है तथा ज्यानयन क्रम भी संगतिपरक हो जाता है।

१. मूल मुद्रित पुस्तक (ई. सन् १९२६) में उक्त स्थान पर **शराङ्काः** यह पाठ है जो कि शुद्ध नहीं है। यहाँ पर **शराश्वाः** यह पाठ ही समीचीन होगा। क्योंकि **शराङ्काः** पाठ पूर्वाङ्कों के अन्तर से न्यून तथा पराङ्कों के अन्तर से अधिक के अन्तर का है।

अथवा व्यवकलित कर मध्यम चन्द्र एवं स्पष्ट चन्द्र का अन्तर प्राप्त करते हैं। चन्द्रमा का मध्यम मन्दफल ३०१.७८ कला (५°/१'.७८) के तुल्य है। यह मन्दफल कदाचित भी ३°/४३'.७८ से न्यून तथा ६°/१९'.७८ कला से अधिक नहीं होता। इन दोनों न्यूनाधिक मन्दफलों के अन्तर का आधा प्रथम चर बीजफल होता है। न्यूनाधिक मन्दफलान्तर का आधा करने पर ७८ कला तुल्य परम चरबीजफल प्राप्त होता है। इसका आवृत्तिकाल ३१.८०४८७२४७ दिन है। स्वमन्दकेन्द्रगति वशात् चन्द्रमा का अपने उच्च से उच्च तक का आवृत्तिकाल २७.५५४५४५ दिन है। दोनों आवृत्ति कालों का अन्तर ४.२५०३२७४६८ स्वल्पान्तर से होगा। इस अन्तर दिनों में चन्द्रमा अपनी सापेक्ष वियोग गति से जितने अंश-कला-विकलातुल्य कोण अन्तरित करेगा उतने अंश-कला-विकलात्मक चन्द्र के मन्दफल का और परम मन्दफल का अन्तर स्वल्पान्तर से प्रथम परम चरबीजफल होगा।

चन्द्रगति = ग☾

सूर्यगति = ग☉

चन्द्रोच्चगति = ग'

चन्द्रपरममन्दफल = इ.

अन्तर दिन = का

ग☾ - (२ग☉ - ग'/२) = $ग'_{१}$ (सापेक्ष वियोग गति) १

इ. - ज्या ($ग'_{१}$ • का) • इ. = फ (परम चरबीज फल) २

अङ्कानुसन्धान

समीकरण १ से,

ग☾ - (२ग☉ - ग'/२) = $ग'_{१}$

७९०'.५८१३८८९ - (५९'.१३६२०८३३ X २ - ६'.६८१६६६६ ÷ २)

= ७९०'.५८१३८८९ - (११८'.२७२४१६७ - ३'.३४०८३३३)

= ७९०'.५८१३८८९ - ११४'.९३१५८३३

= ६७५'.६४९८०५६ = $ग'_{१}$

समीकरण २ से,

इ. - ज्या ($ग'_{१}$ • का) • इ. = फ

३०१'.७८ - ज्या (६७५'.६४९८०५६ X ४.२५०३२७४६८) X ३०१'.७८

= ३०१'.७८ - ज्या (२८७१'.७३२९२८२५) X ३०१'.७८

= ३०१'.७८ - ०.७४१५३३५५७ X ३०१'.७८

= ३०१'.७८ - २२३'.७७९९९९७

= ७८'.०० = फ

यही चर बीज फल न्यूनाधिक मन्दफलान्तरार्ध तुल्य भी होता है। यथा—

सर्वाल्प मन्दफल = ३° । ४३'.७८

सर्वाधिक मन्दफल = ६° । १९'.७८

न्यूनाधिक मन्दफल का अन्तरार्ध = ६° । १९′.७८ - ३° । ४३′.७८ ÷ २
= २° । ३६′.० ÷ २
= १° । १८′.०
= ७८′.० = चरबीजफल

पूर्व अंकानुसन्धान में आवृत्तिकालान्तरगुणित सापेक्षवियोगगतितुल्य कला-विकलात्मक कोणीय प्रमाण को निम्नलिखितानुसार भी प्राप्त कर सकते हैं। यथा अनुपात द्वारा,

यदि परममन्दफलज्या (उत्केन्द्रिता) में त्रिज्या तुल्य भुजज्या प्राप्त होती है तो सर्वाल्पमन्दफलज्या में कितने कला-विकला प्रमाण की भुजज्या होगी। ऐसा अनुपात करने पर अन्तर दिन सम्बन्धी भुजज्या होगी। इसका चाप भुजांश होगा। अर्थात् त्रिज्या एवं सर्वाल्प मन्दफल के गुणनफल में परममन्दफल का भाग देकर लब्धितुल्य भुजज्या का चाप आवृत्तिकालान्तरगुणित सापेक्षवियोगगति तुल्य कला-विकलात्मक कोणीय प्रमाण होगा। यथा,

त्रिज्या = र
आवृत्तिकालान्तरजनित कोणीय प्रमाण = का • $ग_१$
सर्वाल्पमन्दफल = फ
परममन्दफल = इ

अतः,

र • फ ÷ इ. = ज्या (का • $ग_१$) ३

इस ज्या (का • $ग_१$) को चाप में परिणत करने पर (का • $ग_१$) प्राप्त होगा।

अङ्कानुसन्धान

र = ३४३८
फ = ३° । ४३′.७८ = २२३.७७९९९७
इ. = ३०१.७८

अतः समीकरण ३ से,

= (३४३८X२२३.७७९९९७) ÷ ३०१.७८
= ७६९३५५.६२९ ÷ ३०१.७८
= २५४९.३९२३६९ = ज्या (का • $ग_१$)

यह प्रमाण ज्या तुल्य है अतः इसका चाप ज्ञात करने के लिए इसमें त्रिज्या का भाग देंगे जिससे इसकी प्राकृतिकज्या ज्ञात हो जाएगी तदुपरान्त लघुरिक्थ (Chambar`s tabales) सारिणी की सहायता से चाप प्रमाण ज्ञात करेंगे।

यथा,

२५४९.३९२३६९ ÷ ३४३८ = ०.७४१५३३५५७ (Natural sine)

०.७४१५३३५५७ के निकटवर्ती प्राकृतिक ज्या का प्रमाण लघुरिक्थ सारिणी में ०.७४१३९०५ है जिसका चाप प्रमाण ४७° । ५१′ है तथा ४७° । ५२′ की प्राकृतिक ज्या का प्रमाण इसी सारणी में ०.७४१५८५७ दिया हुआ है। उपर्युक्त समीकरणगत ज्या प्रमाण

४७° । ५१' तथा ४७° । ५२' के अन्तराल में स्थित है अतः अनुपात करेंगे।

ज्या(४७°/५२') = ०.७४१५८५७ = अ

ज्या (४७°/५१') = ०.७४१३९०५ = ब

ज्या (अ-ब) = ०.०००१९५२

ज्या (का॰गं₁) = ०.७४१५३३५७ = स

ज्या(स-ब) = ०.७४१५३३५५७ - ०.७४१३९०५०० = ०.०००१४३०५७

अतः

$$\frac{६०'' \text{ज्या (स-ब)}}{\text{ज्या (अ-ब)}} = \text{य} .... ४$$

(६०" x ०.०००१४३०५७) ÷ ०.०००१९५२ = ४३".९७२४४

चा (ब+य)=का॰गं₁ ५

४७° । ५१'.००" + ०° । ०' । ४३".९७=४७° । ५१' । ४४" = २८७१.७३२८७४

(स्वल्पान्तर से)

चूँकि सूर्य, पृथ्वी और चन्द्र दोनों को आकर्षित करता है तथा पृथ्वी चन्द्रमा को आकर्षित करती है अतः उन दोनों के ऊपर दिशात्मक अथवा तीव्रतात्मक अथवा संयुक्तरूप से दोनों ही कर्षों का जो प्रभाव पड़ता है उससे चन्द्रगोल की सापेक्ष स्थिति निर्मित होती है। उक्त भेदद्वय (दिशात्मक, तीव्रात्मक) के आश्रित आकर्षण की सापेक्ष विकार (Disturbing force) अथवा व्यवधान बल संज्ञा की गई है। पृथ्वी तथा चन्द्र के भिन्न-भिन्न परिमाण घटित होने से आकर्षण प्रमाण भी भिन्न-भिन्न होता है। इस आकर्षण प्रमाण की भिन्नता से और दिशा-भिन्नता के कारण चन्द्रमा की भू सापेक्ष गति में सूर्यगोलकृत आकर्षण-वैषम्य उत्पन्न करता है। यही बात भास्कराचार्य ने भी कही है कि सूर्य के सम्यक् आकर्षण वशात् चन्द्रमा की स्वाभाविक गति में वैषम्य उत्पन्न होता है।

चूँकि भूकृत चन्द्राकर्षण की अपेक्षा सूर्यकृत चन्द्राकर्षण २.०६४५२ गुना अधिक है, फिर भी सापेक्ष विकार अत्यल्प होता है क्योंकि सूर्य, भूगोल सह चन्द्रगोल को एक साथ संयुक्त रूप से अपनी और आकर्षित करता है। इसका प्रमाण भूकृत चन्द्राकर्षण का लगभग ९०वाँ भाग होता है। यह सापेक्ष विकार दो प्रकार का होता है। पहला केन्द्रच्युतिव्यभिचारजन्य विकार (प्रथम चरबीज) तथा दूसरा इससे भिन्न व्यभिचारजन्य विकार (द्वितीय चरबीज) होता है। चूँकि भूकृत चन्द्राकर्षण से सूर्यकृत चन्द्राकर्षण द्विगुणित प्रमाण में है अतः चन्द्रमन्द केन्द्र गति में द्विगुणित सूर्य गति का ऋण संस्कार करते हैं।

२४ ज्यापदार्थों को उपलब्ध करने का प्रकार

वृत्त का ९६ वाँ भाग २२५' (३°/४५') के तुल्य होता है इस भाग की ज्या तथा चापप्रमाण समतुल्य होते हैं। इस प्रथम ज्यार्ध में प्रथम ज्या का मन्दफल (उत्केन्द्रीफल) लाकर उसे दूनाकर जोड़ देंगे। योग फल प्रथम वैषम्य केन्द्रांशज्या होगी। यहाँ पर त्रिज्या तथा परमचरबीजफलानुपात योज्यान्तरफल है जो कि वैषम्यकेन्द्रांशज्या के वृद्धिका प्रमाण है। प्रथम वैषम्य केन्द्रांशज्या के द्विगुणित प्रमाण में योज्यान्तरफल जोड़ने पर द्वितीय केन्द्रांशज्या होगी। इसमें प्रथम केन्द्रांशज्या और योज्यान्तरफल के योग का दूना जोड़ने पर तृतीय

केन्द्रांशज्या होगी। इसमें प्रथम केन्द्रांशज्या जोड़ने पर चतुर्थ केन्द्रांशज्या होगी। इसके आगे आठवीं ज्या तक क्रमशः प्रथम केन्द्रांशज्या को जोड़ते रहने पर पाँचवीं, छठीं सातवीं तथा आठवीं केन्द्रांशज्याएँ होगी। प्रथम केन्द्रांशज्या में योज्यान्तरफल को घटाकर शेषफल को आठवीं केन्द्रांशज्या में जोड़ने पर नौवीं तथा इसमें पुनः शेषफल को जोड़ने पर दसवीं केन्द्रांशज्या होगी प्रथम केन्द्रांशज्या में क्रमशः योज्यान्तरफल के द्विगुणित तथा त्रिगुणित (तीन गुना) मान को घटाकर प्रथम शेषफल को दसवीं केन्द्रांशज्या में जोड़ने पर ग्यारहवीं तथा ग्यारहवीं केन्द्रांशज्या में द्वितीय शेषफल को जोड़ने से बारहवीं केन्द्रांशज्या होगी। प्रथम केन्द्रांशज्या में योज्यान्तरफल का चार गुना मान घटाकर शेषफल को क्रमशः बारहवीं केन्द्रांशज्या में जोड़ने पर तेरहवीं तथा तेरहवीं में जोड़ने पर चौदहवीं एवं चौदहवीं में जोड़ने पर पन्द्रहवीं केन्द्रांशज्या होगी। प्रथम केन्द्रांशज्या में योज्यान्तरफल का पाँच गुना मान घटाकर शेषफल को पन्द्रहवीं केन्द्रांशज्या में जोड़ने पर सोलहवीं केन्द्रांशज्या होगी और यही सत्रहवीं केन्द्रांशज्या भी होगी। इस सत्रहवीं केन्द्रांशज्या में पुनः शेषफल को जोड़ने पर अठारहवीं केन्द्रांशज्या होगी तथा यही उन्नीसवीं केन्द्रांशज्या भी होगी। पुनः इसी केन्द्रांशज्या में शेषफल को जोड़ने पर बीसवीं केन्द्रांशज्या होगी और यही इक्कीसवीं केन्द्रांशज्या भी होगी। इस इक्कीसवीं केन्द्रांशज्या में योज्यान्तरफल को जोड़नेपर क्रमशः बाईसवीं, तेईसवीं तथा चौबीसवीं केन्द्रांशज्याएँ उत्पन्न होगी। यहाँ पर पन्द्रहवीं केन्द्रांशज्या प्राप्त होने के उपरान्त सोलहवीं से इक्कीसवीं केन्द्रांशज्या तक का मान योज्यान्तरफल को जोड़कर भी प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि प्रथम केन्द्रांशज्या और पांच गुना योज्यान्तरफल का अन्तर योज्यान्तरफल तुल्य ही होता है।

सामान्यतया चौबीस ज्यार्धों का आनयन जिस प्रकार से स्पष्टाधिकार (सिद्धान्त शिरोमणि) में बताया गया है उससे भिन्न प्रकार द्वारा उपर्युक्त ज्यार्धों का आनयन किया गया है जिसकी उपलब्धि व्याससमास प्रकृया से होती है तथा इसी के अनुसार २४ ज्यार्धों के चौबीस चर बीज फल प्राप्त होते हैं। पूर्व श्लोक के अन्त में "एवं व्यासात्समासाच्चपौनः पुन्येनवेधनात्" इत्यादि व्यवस्थाभास्कराचार्य द्वारा बताई गई है और वैषम्यकेन्द्रांशज्या लाने के लिए सर्व प्रथम राश्यादि वैषम्यानयन करने को कहा गया है। इसके लिए "चन्द्राच्च तद्योगवियोगतश्च साध्यं हि भाद्यं विषमं यतः स्यात्" इत्यादि प्रमाण बताया गया है। उपर्युक्त केन्द्रांशज्याओं का सारणियन बीजगणितीय व्यवस्थानुसार नीचे दिया जा रहा है।

प्रथमज्या = ज्या अ

चन्द्रपरममन्दफल = इ.

त्रिज्या = र

प्रथमवैषम्यकेन्द्रांशज्या = $ज्याके_{१}$

$ज्याअ + २ (ज्याअ \cdot इ. \div र) = ज्याके_{१}$

अतः,

$ज्याअ (र + २इ.) \div र = ज्याके_{१}$. ६

तथा

योज्यान्तरफल = ±फ

परमचरबीजफल = च

अतः

र/च = ±फ

केन्द्रांशज्या का त्रिकोणमितिक सारणीयन

१- १ ज्याके$_{१}$ = ज्याके$_{१}$	१३- ज्याके$_{१२}$ + (ज्याके$_{१}$-४फ) = ज्याके$_{१२}$
२- २ ज्याके$_{१}$ +फ = ज्याके$_{२}$	१४- ज्याके$_{१३}$ + (ज्याके$_{१}$-४फ) = ज्याके$_{१४}$
३- ३ ज्याके$_{१}$ +३फ= ज्याके$_{३}$	१५- ज्याके$_{१४}$ + (ज्याके$_{१}$-४फ) = ज्याके$_{१५}$
४- ४ ज्याके$_{१}$ +३फ= ज्याके$_{४}$	१६- ज्याके$_{१५}$ + (ज्याके$_{१}$-५फ) = ज्याके$_{१६}$
५- ५ ज्याके$_{१}$ +३फ= ज्याके$_{५}$	१७- ज्याके$_{१५}$ + (ज्याके$_{१}$-५फ) = ज्याके$_{१७}$
६- ६ ज्याके$_{१}$ +३फ= ज्याके$_{६}$	१८- ज्याके$_{१७}$ + (ज्याके$_{१}$-५फ) = ज्याके$_{१८}$
७- ७ ज्याके$_{१}$ +३फ = ज्याके$_{७}$	१९- ज्याके$_{१७}$ + (ज्याके$_{१}$-५फ) = ज्याके$_{१९}$
८- ८ ज्याके$_{१}$ +३फ = ज्याके$_{८}$	२०- ज्याके$_{१९}$ + (ज्याके$_{१}$-५फ) = ज्याके$_{२०}$
९- ९ ज्याके$_{१}$ +२फ = ज्याके$_{९}$	२१- ज्याके$_{१९}$ + (ज्याके$_{१}$-५फ) = ज्याके$_{२१}$
१०-१० ज्याके$_{१}$+फ = ज्याके$_{१०}$	२२- ज्याके$_{२१}$ + (ज्याके$_{१}$-५फ) = ज्याके$_{२२}$
११-११ ज्याके$_{१}$-फ = ज्याके$_{११}$	२३- ज्याके$_{२१}$ + फ = ज्याके$_{२३}$
१२-ज्याके$_{११}$+(ज्याके$_{१}$-३फ)=ज्याके$_{१२}$	२४- ज्याके$_{२१}$ + फ = ज्याके$_{२४}$

अङ्कानुसन्धान

ज्या अ = २२५′

चन्द्रपरममन्दफल = ३०१′.४८६

त्रिज्या = ३४३८′

परमचर बीजफल = ७८′

समीकरण ६ से,

ज्या अ (र + २ इ ÷ र) = ज्याके$_{१}$

२२५′x (३४३८ + २ x ३०१.४८६) ÷ ३४३८′

= २२५ x ४०४०.९७२ ÷ ३४३८

= ९०९२१८.७ ÷ ३४३८

= २६४.४६१५२ = ज्याके$_{१}$

समीकरण ७ से,

र/च = ±फ

३४३८′ ÷ ७८′ = ४४′.०७६९२ = ±फ

केन्द्रांशज्या की सारिणी के तीसरी, बारहवीं, सोलहवीं केन्द्रांशज्या का गणितोदाहरण

(३) ३ज्याके$_{१}$+ ३फ = ज्याके$_{३}$

३ x २६४.४६१५२ + ३ x ४४.०७७

= ७९३.३८४५६ + १३२′.२३१

= ९२५.६१५६ = ज्याके$_{३}$

(१२) ज्याके$_{११}$ + (ज्याके$_{१}$ - ३फ) = ज्याके$_{१२}$

ज्याके$_{११}$ = २८६५

२८६५ + (२६४.४६१५२ - ३ x ४४.०७७)

= २८६५ + (२६४.४६१५२ - १३२.२३१)

= २८६५ + १३२.२३१

= २९९७.२३१ = ज्याके$_{१२}$

(१६) ज्याके$_{१५}$+ (ज्याके$_{१}$ - ५फ) = ज्याके$_{१६}$

ज्याके$_{१५}$ = ३२६१.६९२३१

३२६१.६९२३१ + (२६४.४६१५२ - ५ x ४४.०७७)

= ३२६१.६९२३१ + (२६४.४६१५२ - २२०.३८५)

= ३२६१.६९२३१ + ४४.०७६५

= ३३०५.७६९ = ज्याके$_{१६}$

इसी प्रकार चौबीस केन्द्रांशज्याओं का पूर्वोक्त सारिणी से आंकिक मान लाकर नीचे सारिणीयन किया गया है।

ज्याक्र. वैषम्यकेन्द्रांशज्या	ज्याक्र. वैषम्यकेन्द्रांशज्या	ज्याक्र. वैषम्यकेन्द्रांशज्या
१ - २६४.४६१५४	९ - २४६८.३०७७०	१७ - ३३०५.७६९२३१
२ - ५७३.०००००	१० - २६८८.६९२३१	१८ - ३३४९.८४६२००
३ - ९२५.६१५४०	११ - २८६५.०००००	१९ - ३३४९.८४६२००
४ - ११९०.०७६९२	१२ - २९९७.२३०७७	२० - ३३९३.९२३१००
५ - १४५४.५३८५०	१३ - ३०८५.३८४६२०	२१ - ३३९३.९२३१००
६ - १७१९.०००००	१४ - ३१७३.५३८५००	२२ - ३४३८.०००००
७ - १९८३.४६१५४	१५ - ३२६१.६९२३१०	२३ - ३४३८.०००००
८ - २२४७.९२३१०	१६ - ३३०५.७६९२३१	२४ - ३४३८.०००००

उपर्युक्त केन्द्रांशज्या की सहायता से चरबीज फलायन–

केन्द्रांशज्या को परम चर बीजफल से गुणाकर गुणनफल में त्रिज्या से भाग देने पर लब्धी केन्द्रांशज्या सम्बन्धी चरबीजफल प्राप्त होगा उपर्युक्त २४ केन्द्रांशज्याओं को क्रमशः चरमचरबीजफल ७८ कला से गुणा करने पर तथा त्रिज्या से भाग देने पर भास्करोक्त "रसागुणेन्दू शशिलोचनौ च" इत्यादि २४ चरबीजफल उपलब्ध होते हैं।

वैषम्य केन्द्रांशज्या = ज्याके$_{न}$

परमचरबीज फल = च

त्रिज्या = र

इष्ट चरबीजफल = फ$_{न}$

अतः, ज्याके$_{न}$ • च ÷ र = फ$_{न}$. ८

अङ्कानुसन्धान

ज्याके$_{न}$ = २६४'.४६१५४ (ज्याके$_{१}$)
च = ७८'
र = ३४३८'

समीकरण ८ से,

२६४.६४१५४ x ७८' ÷ ३४३८' = फ$_{न}$
= २०६२८'.००० ÷ ३४३८'
= ६'.०००० = फ$_{न}$ (प्रथमचरबीजफल)

इसी प्रकार २४ चरबीजफलों का आनयन करेंगे। भास्कराचार्य ने इन चरबीजफलों को सिद्धकर "रसागुणेन्दू" इत्यादि श्लोक में पठित किया है जिसकी विस्तृत सारिणी नीचे दी जा रही है।

ज्याक्र.	ज्याके$_{न}$	x च	÷	र	= फ$_{न}$	फलान्तर
१-	२६४.४६१५४	x ७८	÷	३४३८	= ६'	
२-	५७३.०००००	x ७८	÷	३४३८	=१३	७
३-	९२५.६१५४०	x ७८	÷	३४३८	= २१	८
४-	११९०.०७६९२	x ७८	÷	३४३८	= २७	६
५-	१४५४.५३८५	x ७८	÷	३४३८	= ३३	६
६-	१७१९.०००००	x ७८	÷	३४३८	= ३९	६
७-	१९८३.४६१५४	x ७८	÷	३४३८	=४५	६
८-	२२४७.९२३१	x ७८	÷	३४३८	= ५१	६
९-	२४६८.३०७७	x ७८	÷	३४३८	= ५६	५
१०-	२६८८.६९२३१	x ७८	÷	३४३८	= ६१	५
११-	२८६५.०००००	x ७८	÷	३४३८	= ६५	४
१२-	२९९७.२३०७७	x ७८	÷	३४३८	= ६८	३
१३-	३०८५.३८४६२	x ७८	÷	३४३८	= ७०	२
१४-	३१७३.५३८५०	x ७८	÷	३४३८	= ७२	२
१५-	३२६१.६९२३१	x ७८	÷	३४३८	= ७४	२
१६-	३३०५.७६९२३१	x ७८	÷	३४३८	= ७५	१
१७-	३३०५.७६९२३१	x ७८	÷	३४३८	= ७५	०
१८-	३३४९.८४६२०	x ७८	÷	३४३८	= ७६	१
१९-	३३४९.८४६२०	x ७८	÷	३४३८	= ७६	०
२०-	३३९३.९२३१	x ७८	÷	३४३८	= ७७	१
२१-	३३९३.९२३१	x ७८	÷	३४३८	= ७७	०
२२-	३४३८.०००००	x ७८	÷	३४३८	= ७८	१
२३-	३४३८.०००००	x ७८	÷	३४३८	= ७८	०
२४-	३४३८.०००००	x ७८	÷	३४३८	= ७८	०

उपर्युक्त चरबीजफलों को इष्टमन्दफल के साथ संयोजित कर मध्यम चन्द्र में धन अथवा ऋण करेंगे। चूँकि इसप्रथम चरबीज फल की प्रवृत्ति (प्रारम्भ) तथा निवृत्ति (समापन) चन्द्रोच्च से होती है अत एव मन्दफल के समान ही इसका योगान्तर करेंगे। तुलादी ६ राशियों में अर्थात् २७० अंश से ३६० अंश तक के मध्य में मन्दकेन्द्र होने पर मन्दफल धन होता है। अतः वैषम्यकेन्द्रांश के तुलादि ६ राशियों में होने पर चरफल धन होगा। मेषादि ६ राशियों में अर्थात् शून्य से १८० अंशों तक के मध्य में मन्दकेन्द्र होने पर मन्दफल ऋण होता है अतः वैषम्य केन्द्रांश के मेषादि ६ राशियों में होने पर चरफलऋण होगा।

अर्कस्फुटाच्चन्द्रमिमंविशोध्यशिष्टे ऋणं त्वोजपदेफलं स्यात्।
अतोऽन्यथान्यत्रयथाक्रमं वै ब्रुवेफलानामपिपिण्डकानि॥ २९॥

रसाश्च ६ **नन्दा** ९ **गुणतारकेशौ** १३
भूभृद्भुवौ १७ **बाहुकरौ** २२ **जिनाश्च** २४
ताराः २७ **खरामा** ३० **द्विगुणाश्च** ३२ **देवा** ३३
वाराशिरामाः ३४ **सरिदीशकालाः** ३४ **॥ ३०॥**

वेदाग्नयो ३४ **दानवशत्रवश्च** ३३
शशाङ्कवह्नी ३१ **नवबाहवश्च** २९
रसाश्विनौ २६ **वेदकरौ** २४ **खबाहू** २०
रसक्षमे १६ **रुद्र** ११ **गजा** ८ **नलाः** ३ **खम्** ० **॥ ३१॥**

एताः कला ओजपदे ऋणंस्युर्धनं तदन्यत्र भवन्तिभूयः।
अनेन युक्तश्चशशिस्फुटः स्यात् कर्मार्हकालानयनेषुयोग्यः॥ ३२॥

वासनाभाष्य—अथद्वितीयमाह "अर्कस्फुटाच्चन्द्रमिति। निगदव्याख्यात मेतत्। स्पष्टमेव।

भाषा—इस चन्द्र को अर्थात मन्दफल और प्रथम चरफल संस्कार युक्त चन्द्रको स्पष्ट सूर्य में घटाकर शेष यदि ओजपद (विषमपद) में हो तो फल ऋण होगा। समपद में इसके विपरीत होगा। अर्थात् शेष यदि समपद में हो तो फल धन होगा। यहाँ पर क्रमानुसारफलों के पिण्डों को भी कहता हूँ। ६,९,१३,१७,२२,२४,२७,३०,३२,३३,३४,३४,३४,३३,३१, २९,२६,२४,२०,१६,११,८,३,० ये कलाएँ विषम पद में ऋण होंगी। अन्यत्र इसके विपरीत धन होंगी पुनः इससे संयुक्त चन्द्र स्पष्ट होगा और कर्मयोग्य कालानयन के योग्य होगा अर्थात् उपयुक्त होगा।

विज्ञानभाष्य—उपर्युक्त चरबीजफल सूर्य चन्द्र के अंशात्मक अन्तर पर आश्रित है। मन्द फल एवं प्रथम चर बीज फल से संयुक्त मध्यम चन्द्र और मन्दफल से संयुक्त सूर्य के अन्तरांशों की ज्या को परम चर बीज ३४ कला से गुणकर त्रिज्या से भाग देने पर अभीष्ट अन्तरांशज्या सम्बन्धी चरफल होता है। इस चरबीजफल का परम मान पदार्धों पर अर्थात ४५ अंशों के अन्तर पर सूर्य-चन्द्र के परस्पर आगे पीछे स्थित रहने पर होता है। जो परमफल ४५ अंशों पर होगा वही ४५ अंशों के द्विगुणित प्रमाण की ज्या (त्रिज्या) तुल्यता पर भी होगा। सिद्धान्त शिरोमणि के स्पष्टाधिकार में उदयान्तर कर्म के वासना भाष्य में भाष्यकारोक्त "**द्विगुणितस्यार्कस्य यावद् भुजः क्रियते तावत् पदमध्ये राशित्रयं भवति**" इत्यादि वचन प्रमाणानुसार पदार्ध पर परम चरबीजफल की उपलब्धता सूर्य चन्द्र के द्विगुणित अन्तरांशज्या होने पर होती है क्योंकि जब द्विगुणित अन्तरांश की ज्या करते हैं तब

वह पद मध्य में त्रिज्या तुल्य हो जाती है तथा पदान्त पर अन्तरांशाभाव होने पर चरबीजफल शून्य हो जाता है, पद मध्य में सर्वाधिक ३४ कला प्राप्त होता है। परम चरबीज फल पदान्त से अथवा नीचोच्च बिन्दु से पदमध्य तक ही उपचयापचयित होता है। इस ग्रन्थ में ग्रन्थकारोक्त **"बीजं चरं यद्रविचन्द्रमान्दस्फुटद्वयापेक्ष मिहेष्यमाणम्"** इत्यादि वचन प्रमाणानुसार इष्ट चर बीज प्राप्त्यर्थ सूर्य और चन्द्र देनों ही मन्दस्पष्ट अपेक्षित हैं। अतः मन्दस्पष्ट चन्द्र में प्रथम चर बीजफल का मन्दफल की तरह संयोजन करने के उपरान्त मन्दस्पष्ट सूर्य में घटा देंगे जो शेष बचेगा वह यदि ओजपद अर्थात् विषमपद में होगा तो इष्ट चरबीजफल ऋण होगा। यदि शेषसमपद में होगा तो इष्ट चरबीजफल धन होगा पदान्त से आगे तथा पीछे ४५ अंशों के चाप योग की ज्या त्रिज्या तुल्य हुई इसका चाप ९० अंश होगा। इसका २४ वां भाग प्रथम चापांश हुआ, इसकी ज्या प्रथम ज्या होगी। अब इस ज्या से प्रथम चर बीजफलानयन हेतु किए गए प्रथम वैषम्य केन्द्रांश ज्यानयन की तरह प्रथम केन्द्रांशज्यानयन करेंगे जो कि प्रथम वैषम्य केन्द्रांशज्या तुल्य ही होगी। इसको प्रथम तथा द्वितीय परम चरबीज के परस्पर अनुपात से गुणाकर देंगे, गुणनफल द्वितीय चरबीजफल हेतु प्रथम तिथि केन्द्रांशज्या होगी। चूँकि स्पष्ट सूर्य तथा चन्द्र का अन्तर अंशात्मक तिथि प्रमाण होता है और जिस प्रकार से उच्च तथा ग्रह का अन्तर मन्दकेन्द्र होता है उसी प्रकार यहाँ पर सूर्य चन्द्र का अंशात्मक अन्तर तिथिकेन्द्रांश्न होगा तथा इसकी ज्या तिथिकेन्द्रांशज्या होगी। चूँकि स्पष्टसूर्य में से चन्द्र को घटाकर शेषांशज्या से फल प्राप्त करते हैं।अतः उक्त तिथि केन्द्रांश की उपलब्धता में स्पष्ट सूर्य को उच्च स्थान की तरह कल्पित करेंगे। जिस प्रकार प्रथम चरबीजफल की प्रवृत्ति निवृत्ति चन्द्रोच्च से होती है उसी प्रकार द्वितीय चरबीजफल की प्रवृत्ति निवृत्ति स्पष्टसूर्य स्थान से होती है। अर्थात जिस फल की प्रवृति निवृत्ति जिस स्थान से होती है वह स्थान उस फल की उपलब्धता में उच्च स्थान होता हैं।अतः स्पष्ट सूर्य द्वितीय चर बीज फल को प्राप्त करने हेतु अंशात्मक उच्च होगा। इस उच्च का और फलद्वय (मन्दफल, प्रथम चर फल) संयुक्त चन्द्र का अन्तर तिथि केन्द्र हुआ।

पदान्त के पूर्व का ४५ अंश और पश्चात का ४५ अंश संयुक्त होकर एक पद होगा जिसका प्रारम्भ स्पष्ट सूर्य स्थान से करते हैं। चन्द्र कक्षा वृत्त के पद का प्रारम्भ चन्द्रोच्च से करते हैं। अतः चन्द्र का विषमपदान्त अथवा नीचोच्च बिन्दु सूर्य स्थान से प्रवृत्त पदों के मध्य में पड़ेगा क्योंकि सूर्य के पदारम्भ तथा पदार्ध पर परस्पर आगे पीछे सूर्य तथा चन्द्र के स्थित रहने पर ही द्वितीय परम चर फल की अवाप्ति होती है और सूर्य का पदार्ध क्रमशः चन्द्रकक्षा वृत्तीय विषम पदान्तों पर, नीच उच्च बिन्दुओं पर अथवा चन्द्र कक्षा वृत्तीयपदार्धों पर होगा। स्फुट सूर्य स्थान से प्रवृत्त पदों में प्रत्येक पद के आरम्भ बिन्दु से पदान्त बिन्दु तक निर्मित रेखापूर्णज्या होगी जिसको पदमध्य स्थित चन्द्र बिन्दु से कक्षा केन्द्र तक जाने वाली रेखा दो समान भागों में विभाजित करेगी।

यह अवस्था चन्द्रकक्षा वृत्तीय विषम पदान्तों पर अथवा नीच उच्च बिन्दुओं पर स्थित सूर्य के पीछे अथवा आगे पदार्ध पर चन्द्र स्थित होने पर होती है तथा यही अवस्था चन्द्रकक्षा वृत्तीय पदार्थ पर भी होती है।पीछे पदार्ध पर स्थित चन्द्र तीव्रगति के कारण क्रमशः पदान्त पर स्थित सूर्य की ओर अग्रसर होगा जिससे सूर्य चन्द्रान्तरांश का ह्रास होता जाएगा और पूर्णजीवा का मान भी घटता जाएगा। पूर्णजीवा का मान घटने से तत्सम्बन्धितज्यार्ध का मान भी घटेगा अन्ततोगत्वासूर्य चन्द्र की संयुति होने पर ज्यार्ध का

मान शून्य हो जाएगा फलस्वरूप द्वितीय चरबीजफल भी शून्य हो जाएगा। संयुति के उपरान्त सूर्य को पीछे छोड़ते हुए जैसे जैसे अग्रिम पदार्ध की ओर चन्द्र क्रमशः अग्रसर होता जाएगा पूर्णजीवा तथा ज्यार्ध के मान में वृद्धि होगी साथ ही चरबीज फल में भी वृद्धि होगी। अन्ततोगत्वा सूर्यचन्द्रान्तर पुनः ४५ अंश होने पर चरबीज फल का परमत्व प्राप्त होगा। यही क्रम अनवरत चलता रहता है।

भास्कराचार्य द्वारा २४ ज्यार्धों के २४ चर बीज फल पठित किए गए हैं। २४ ज्यार्धों का आनयन सामान्यतया आनीत २४ ज्यार्धों से भिन्न है। इसके लिए विशेष प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रथमतः प्रथम चरबीज फल और द्वितीय चरबीज फल के परस्परानुपात को प्रथम वैषम्य केन्द्रांशज्या (२६४.४६१५४) से गुणाकर प्रथम ज्यार्ध प्राप्त करते हैं। इसके उपरान्त त्रिज्या तथा द्वितीय चरबीज फल के अनुपात को यथास्थानानुसार द्विगुणित, त्रिगुणित, चतुर्गुणित कर प्रथम ज्यार्ध के द्विगुणित, त्रिगुणित, चतुर्गुणित तथा पंचगुणित प्रमाण में जोड़कर एक से नौ तक क्रमशः नौ ज्यार्धों को प्राप्त करते हैं। इसके उपरान्त १० वें ज्यार्ध से १२वें ज्यार्ध तक का प्रमाण क्रमशः ९वें ज्यार्ध में योज्यान्तरफल को उत्तरोत्तर जोड़कर प्राप्त करते हैं। तेरहवाँ ज्यार्ध त्रिज्या तुल्य १२ वें ज्यार्ध प्रमाण का होता है। चौदहवें ज्यार्ध से तेईसवें ज्यार्ध तक का प्रमाण क्रमशः द्वितीय से ११ वें ज्यार्ध तक के ज्यार्ध प्रमाण में योज्यान्तर फल को उत्तरोत्तर घटाकर प्राप्त करते हैं। प्रथम ज्यार्ध में त्रिगुणित योज्यान्तरफल घटाने पर तेईसवाँ ज्यार्ध प्राप्त होता है इसमें पुनः त्रिगुणित योज्यान्तर फल घटाने पर २४ वाँ ज्यार्ध शून्य प्रमाण में उपलब्ध होता है। यहाँ पर त्रिज्या और द्वितीय चरबीजफल का अनुपात योज्यान्तरफल है। पदारम्भ से प्रथम ज्यार्धादिक्रमानुसार फल में धनात्मक वृद्धि होती है, पदमध्य में परम फल अवाप्त होत है पुनः फल में ऋणात्मक ह्रास होने से ज्यार्ध प्रमाण में भी ऋणात्मक ह्रास होगा। अतएव १४ वें ज्यार्ध से २३ वें ज्यार्ध तक का प्रमाण योज्यान्तर फल के द्विगुणितादि प्रमाण को क्रमशः घटाकर प्राप्त करते हैं।

यथा,

$$\text{प्रथम चर बीज फल} = \text{च}_{१}$$
$$\text{द्वितीय चर बीजफल} = \text{च}_{२}$$
$$\text{त्रिज्या} = \text{र}$$
$$\text{प्रथम केन्द्रांशज्या} = \text{ज्याके}_{१}$$
$$\text{इष्ट चर फल} = \text{फ}_{२}$$
$$\text{योज्यान्तरफल} = \text{फ}'$$
$$\text{तिथिकेन्द्रांशज्या} = \text{ज्याके}'_{१}$$

अतः

$$\text{ज्याके}_{१} \cdot \text{च}_{१} \div \text{च}_{२} = \text{ज्याके}'_{१} \text{ ...... ९}$$
$$\text{र} \div \text{च}_{२} = \text{फ}' \text{ .... १०}$$
$$\text{च}_{२} \cdot \text{ज्याके}' \div \text{र} = \text{फ}_{२} \text{ .... ११}$$

द्वितीय चर बीज फल हेतु ज्यार्धों की त्रिकोणमितिक सारिणी

१- ज्याकें$_{१}$=ज्या$_{१}$	१२- ज्या$_{१०}$+फ′=ज्या$_{१२}$
२- ज्याकें$_{१}$+३फ′=ज्या$_{२}$	१३- ज्या$_{१०}$+फ′=ज्या$_{१३}$
३- २ज्याकें$_{१}$+फ′=ज्या$_{३}$	१४- ज्या$_{११}$-फ′=ज्या$_{१४}$
४- ज्या$_{३}$+४फ′=ज्या$_{४}$	१५- ज्या$_{९}$-फ′=ज्या$_{१५}$
५- ३ज्याकें$_{१}$+४फ′=ज्या$_{५}$	१६- ज्या$_{८}$-फ′=ज्या$_{१६}$
६- ४ ज्याकें$_{१}$+०=ज्या$_{६}$	१७- ज्या$_{७}$-फ′=ज्या$_{१७}$
७- ४ ज्याकें$_{१}$+३फ′=ज्या$_{७}$	१८- ज्या$_{६}$-०=ज्या$_{१८}$
८- ५ ज्याकें$_{१}$+०=ज्या$_{८}$	१९- ज्या$_{५}$-२फ′=ज्या$_{१९}$
९- ५ ज्याकें$_{१}$+२फ′=ज्या$_{९}$	२०- ज्या$_{४}$-फ′=ज्या$_{२०}$
१०- ज्या$_{९}$+फ′=ज्या$_{१०}$	२१- ज्या$_{३}$-२फ′=ज्या$_{२१}$
११- ज्या$_{१०}$+फ′=ज्या$_{११}$	२२- ज्या$_{२}$-फ′=ज्या$_{२२}$
२३- ज्या$_{१}$-३फ′=ज्या$_{२३}$	२४- ज्या$_{२३}$-३फ′=ज्या$_{२४}$=ज्याकें$_{१}$ ÷ २

अङ्कानुसन्धान

२४ ज्यार्धों का आनयन

(१) प्रथम ज्यानयन समीकरण ९ से,

ज्याके$_{१}$• च$_{१}$ ÷ च$_{२}$ = ज्याकें$_{१}$ (तिथि केन्द्रांशज्या)

ज्याके$_{१}$ = २६४.४६१५४

च$_{१}$ = ७८′

च$_{२}$ = ३४′

अत:

२६४′.४६१५४ x ७८′ ÷ ३४′

= २६४′.४६१५४ x २.२९४११७६४७

= ६०६′.७०५८८५९

योज्यान्तरफलानयन-समीकरण १० से,

र′ ÷ च$_{२}$ = फ′ (योज्यान्तरफल)

र = ३४३८′ एवं च$_{२}$ = ३४′

अत:

३४३८ ÷ ३४ = १०१′.११७६४७१

२४ ज्यार्धों की आङ्किक सारिणी

१-	६०६.७०५८८६		= ६०६.७०५८८६
२-	६०६.७०५८८६	+ (३x१०१.११७६४७१)	= ९१०.०५८८२७२
३-	२ x ६०६.७०५८८६	+ (१०१.११७६४७१)	= १३१४.५२९४१९
४-	१३१४.५२९४१९	+ (४x१०१.११७६४७१)	= १७१९.००००००
५-	३x६०६.७०५८८६	+ (४x१०१.११७६४७१)	=२२२४.५८८२४६
६-	४x६०६.७०५८८६	+ ०	= २४२६.८२३५४४
७-	४x६०६.७०५८८६	+ (३x१०१.११७६४७१)	= २७३०.१७६४८५
८-	५x६०६.७०५८८६	+ ०	= ३०३३.५२९४३
९-	५x६०६.७०५८८६	+ (२x१०१.११७६४७१)	= ३२३५.७६४७२४
१०-	३२३५.७६४७२४००	+ १०१.११७६४७१	= ३३३६.८८२३७१
११-	३३३६.८८२३७१	+ १०१.११७६४७१	= ३४३८.००००००
१२-	३३३६.८८२३७१	+ १०१.११७६४७१	= ३४३८.००००००
१३-	३३३६.८८२३७१	+ १०१.११७६४७१	= ३४३८.००००००
१४-	३४३८.००००००	- १०१.११७६४७१	= ३३३६.८८२३७१
१५-	३२३५.७६४७२४	- १०१.११७६४७१	= ३१३४.६४७०७७
१६-	३०३३.५२९४३	- १०१.११७६४७१	= २९३२.४११७८३
१७-	२७३०.१७६४८५	- १०१.११७६४७१	= २६२९.०५८८३८
१८-	२४२६.८२३५४४	- ०	= २४२६.८२३५४४०
१९-	२२२४.५८८२४६	- (२x१०१.११७६४७१)	= २०२२.३५२९५६
२०-	१७१९.००००००	- १०१.११७६४७१	= १६१७.८८२३५३
२१-	१३१४.५२९४१९	- (२x१०१.११७६४७१)	= १११२.२९४१२५
२२-	९१०.०५८८२७२	- १०१.११७६४७१	= ८०८.९४११८०१
२३-	६०६.७०५८८६	- (३x१०१.११७६४७१)	= ३०३.३५२९४४८
२४-	३०३.३५२९४४८	- ३०३.३५२९४४८	= ०.००००००

२४ चरबीजफलों का आङ्किकमानानयनसमीकरण ११ से,

च$_{२}$• ज्याके ÷ र = फ$_{२}$

च$_{२}$ = ३४,′ ज्याके$_{१}$ = ६०६′.७०५८८६, र = ३४३८′

अत:

३४′ x ६०६′.७०५८८६ ÷ ३४३८′

= २०६२८′.०००१२ ÷ ३४३८′

= ६′ = फ$_{२}$

द्वितीयचरबीजफलकीआङ्किकसारणी

क्र.	ज्याके	•च$_2$	÷ र	=फ$_2$	क्र.	ज्याके	•च$_2$	÷ र	=फ$_2$
१.	६०६.७०५८८६	x ३४	÷ ३४३८	=६	२.	९१०.०५८८२७२	x ३४	÷ ३४३८	= ९
३.	१३१४.५२९४१९	x ३४	÷ ३४३८	=१३	४.	१७१९.००००००	x ३४	÷ ३४३८	= १७
५.	२२२४.५८८२६४	x ३४	÷ ३४३८	=२२	६.	२४२६.८२३५४४	x ३४	÷ ३४३८	= २४
७.	२७३०.१७६४८५	x ३४	÷ ३४३८	=२७	८.	३०३३.५२९४३०	x ३४	÷ ३४३८	= ३०
९.	३२३५.७६४७२४	x ३४	÷ ३४३८	=३२	१०.	३३३६.८८२३७१	x ३४	÷ ३४३८	= ३३
११.	३४३८.००००००	x ३४	÷ ३४३८	=३४	१२.	३४३८.००००००	x ३४	÷ ३४३८	= ३४
१३.	३४३८.००००००	x ३४	÷ ३४३८	=३४	१४.	३३३६.८८२३७१	x ३४	÷ ३४३८	= ३३
१५.	३१३४.६४७०७७	x ३४	÷ ३४३८	=३१	१६.	३९३२.४११७८३	x ३४	÷ ३४३८	= २९
१७.	२६२९.०५८८३८	x ३४	÷ ३४३८	=२६	१८.	२४२६.८२३५४४	x ३४	÷ ३४३८	= २४
१९.	२०२२.३५२९५६	x ३४	÷ ३४३८	=२०	२०.	१६१७.८८२३५३	x ३४	÷ ३४३८	= १६
२१.	११११२.२९४१२५	x ३४	÷ ३४३८	=११	२२.	८०८.९४११८०१	x ३४	÷ ३४३८	= ८
२३.	३०३.३५२९४१२	x ३४	÷ ३४३८	=३	२४.	०.००००००	x ३४	÷ ३४३८	= ०

उपर्युक्त प्रकार से प्राप्त चर बीज फलों को मन्दफल और प्रथम चर बीज फल से संयुक्त मध्यम चन्द्र में धन अथवा ऋण करने पर सूक्ष्म स्पष्टचन्द्र होगा। पूर्वोक्त सूर्यचन्द्रान्तरांश यदि विषमपदीय हो तो उपर्युक्त फल को ऋण करेंगे यदि सूर्यचन्द्रान्तरांश समपदीय हो तो उपर्युक्त फल को धन करेंगे।

उक्त प्रकार से स्पष्टीकृत चन्द्र ही दृग्गणितैक्य एवं तिथि, नक्षत्र, ग्रहण, भेदयुति इत्यादि का सूक्ष्म मान प्राप्त करने में उपयोगी भी होता है। इसके अतिरिक्त मन्दस्पष्ट मात्र चन्द्र अनुपयुक्त और दृग्गणितैक्यता विहीन होता है। अतएव उपर्युक्त फलद्वय से संयुक्त चन्द्र ही परिस्फुट होगा।

यतश्चरं बीजमिदं विशेषात् दृष्ट्यैकगम्यं करणैरसाध्यम्।
ततो यथादर्शनमेवपिण्डान्युक्तानितान्यन्यगतिं विहाय॥ ३३॥

वासनाभाष्य—अथेदानीं निरुक्तप्रकारेण करणादिकमन्तरा बीजफलपिण्डानामेव कथने को हेतुरित्याकाङ्क्षायामाह यतश्चरमिति स्पष्टम्।

भाषा—चूँकि इस चरबीज फल को विशेषरूप से प्रत्यक्ष दृष्टियोग्य किया जाना करण ग्रन्थ से असम्भव है। अतएव अदृश्य पदार्थ रूप इन पिण्डों को कहा गया है क्योंकि इस विषय में कोई भी अन्यथागति नहीं होती।

विज्ञानभाष्य—सिद्धान्त ज्योतिष ग्रन्थों के आधार पर भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न करणग्रन्थों का निर्माण हुआ है। करण ग्रन्थों में सूर्यचन्द्रादि समस्त ग्रहों की, आकाशीय स्थिति का निर्धारण करने की विस्तृत गणितीय प्रक्रिया अभिहित होती है। उन समस्त करण ग्रन्थों के ध्रुवाङ्कों का आधारवर्ष करणाब्द (करणग्रन्थनिर्माणशक) होता है जो की

भिन्न भिन्न होता है। अतः ध्रुवाङ्कों (ज्योतिषीयस्थिराङ्कों) में भी पर्याप्त भिन्नता होती हैं इनके आधार पर किए गए ग्रह गणित में प्रत्यक्षप्रतीति हेतु एकरूपता का अभाव होता है साथ ही प्रत्यक्ष प्राबल्य हेतु एकरूपता निर्मित कर पाना भी साध्य नहीं है। अतः अन्यग्रह गतियों को छोड़ कर विशेष रूप से चन्द्रगति वैषम्य के निराकरणार्थ चरबीज फल द्वय का निरूपण किया गया। चूँकि सूर्याकर्षण के कारण और भू आकर्षण के कारण चन्द्र की सामान्य गति में विषमता की प्रत्यक्ष प्रतीत मात्र होती है तथा चरफलपिण्डों की प्रत्यक्ष दृश्यता या स्वतन्त्र रूप से दृश्यता का अभाव रहता है। इसकी गणितीय प्रतीति सामान्य गति और विषमगति के अन्तराल में होती है जोकि मध्यचन्द्र की कोटिज्या से उत्पन्न कोटिफल के आश्रित है। अतएव पूर्वोक्त चरबीज फलद्वय विशेष रूप से चन्द्रमा के लिए अभिहित किया गया है क्योंकि इसका गत्यात्मक और तीव्रात्मक सञ्चरण अन्य ग्रहों के गत्यात्मक तथा तीव्रात्मक सञ्चरण से पर्याप्त भिन्न है।

तिथिद्वयं यद्यपराह्णसक्तं स्थूलैर्विवेक्तुं नहिशक्यतेऽतः।
नेयं तदेतत् चरबीजसिद्धात्सूक्ष्माद्विधोर्दोषकृदन्यथास्यात्॥ ३४॥

वासनाभाष्य—अथेदानीं स्पष्टीकृतस्य चन्द्रस्य प्रयोजनमाह तिथिद्वयमितिस्पष्टम्।

भाषा—यदि अपराह्णसक्त तिथिद्वय हो तो उनको स्थूलतापूर्वक कह पाना सम्भव नहीं है। इसलिए चरबीजसंस्कृत सूक्ष्म चन्द्रमा से तिथि आनयन करना चाहिए अन्यथा यह दोषपूर्ण (अशुद्ध) हो जाएगा।

यात्राविवाहोत्सव जातकादौखेटै स्फुटैरेवफलस्फुटत्वम्।
स्यात्प्रोच्यते तेन नभश्चरणांस्फुटक्रियादृग्गणितैक्यकृद्या॥ ३५॥

वासनाभाष्य—अथेदानीं स्फुटाधिकारोक्त स्पष्टीकरणस्य चरबीजसंस्कारपर्यन्ततां ज्ञापयितुं तदधिकारोपक्रमोक्तश्लोकेनेमं प्रकरणं सङ्गमयन्नाह यात्रेति। प्रोच्यते सर्वैः शास्त्रैरिति प्राकरणिकोऽर्थः। या दृग्गणितैक्यकृत सा स्फुटक्रियेतियोजना। एतेन स्पष्टाधिकारोक्त-स्फुटक्रिया न तत्र परिसमाप्ता किन्त्वत्रैव परिसमाप्तेतिज्ञापितम्।

भाषा—स्पष्टग्रह से ही यात्रविवाहोत्सवजातकादिकर्मफल में स्पष्टता होती है। अतः उक्त कारणों से ग्रहों की दृग्गणितैक्य कृत जो स्फुटगणितीय क्रिया है उसको कहते हैं।

पर्वावसानं हि कदम्बसूत्रस्थित्यर्धनाड़ी शशभृद्ग्रहेस्यात्।
अबीजसंस्कारतिथेः समाप्तौ सा वै न दृष्टा न तदस्तदिष्टम्॥ ३६॥

वासनाभाष्य—अथेदानीं केवलं हव्यकव्यादिकालानयनमात्रोपयुक्तं बीजसंस्करणं ग्रहण-ग्रहयुद्धसमागमादीनामपि इदमावश्यकमित्याह पर्वावसानमिति। यतः अबीजसंस्कृत चन्द्रा-नीतपर्वान्ते कदम्बसूत्रस्थित्यर्धस्य अनुपलम्भः तत एव हेतोः स्थूलग्रहेण तिथ्याद्यानयनस्य दुष्टत्वावगमात् तन्नेष्टमित्यर्थः।

भाषा—चन्द्रग्रहण में कदम्बसूत्रस्थ स्थित्यर्ध घटिका पर्वान्त में होती है। बीज संस्कार रहित चन्द्रस्पष्ट से लाए गए तिथ्यन्त में उक्त स्थित्यर्ध कदम्बसूत्र पर दिखाई नहीं पड़ता इसलिए अबीज संस्कृत चन्द्र अभीष्ट नहीं है।

विज्ञानभाष्य—चन्द्रग्रहण में ग्राह्यबिम्ब (चन्द्र) तथा ग्राहक बिम्ब (भूछाया) का स्पर्शकाल से मोक्षकाल तक का कालात्मक (समयात्मक) प्रमाण स्थिति प्रमाण होता है। अतः

स्पर्शकाल से ग्रहण मध्य काल तक स्पार्शिक स्थित्यर्ध (सम्पूर्ण स्थिति का आधा) तथा मध्य ग्रहणकाल से मोक्ष काल तक मौक्षिक स्थित्यर्ध होता है। इसस्थित्यर्धकला का मान क्रान्तिवृत्त पर होता है। चन्द्रकक्षास्थित चन्द्रबिम्ब केन्द्र से क्रान्तिवृत्तस्थ भूछाया केन्द्र तक बिम्बकलामानयोगार्ध (मानैक्यार्ध) होता है। अपनी कक्षा पर स्थित चन्द्र जिस काल में क्रान्तिवृत्तीय भूछाया बिम्ब प्रान्त को स्पर्श करता है उस काल का शर स्पार्शिकशर होता है। चन्द्रबिम्बकेन्द्रगतकदम्बप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त को जिस बिन्दु पर काटता है वह बिन्दु चन्द्रस्थान होता है अतः स्पर्शकाल में क्रान्तिवृत्तीय चन्द्रस्थान और स्वकक्षास्थित चन्द्रकेन्द्र के अन्तरवर्ति कदम्बप्रोतवृत्तीय चापखण्ड स्पार्शिक शर होगा और कदम्बप्रोतवृत्त के क्रान्तिवृत्त पर लम्बवृत्त होने के कारण स्पार्शिक शर भी क्रान्तिवृत्त पर लम्ब होगा। इस स्पार्शिकशर के कलाप्रमाण के वर्ग को उपर्युक्त मानयोगार्ध वर्ग में घटाकर वर्गान्तर मूल लेने पर स्पार्शिक चन्द्र स्थान से भूछायाकेन्द्र तक के क्रान्तिवृत्तीय चाप की ज्या का मान प्राप्त होगा। यही मान स्थित्यर्धकला होती है। और यही क्रान्तिवृत्तीय स्थित्यर्धकला कदम्बसूत्र पर भी तुल्य प्रमाण में प्राप्त होती हैं इस स्थित्यर्ध कला प्रमाण का और सूर्य-चन्द्र के स्फुटगन्त्यन्तरांश के साठवें भाग का अनुपात स्थित्यर्धकाल होता है और यही काल प्रमाण कदम्बसूत्रस्थित्यर्ध का भी होगा।

जिस प्रकार क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव को कदम्ब कहते हैं उसी प्रकार चन्द्रकक्षावृत्तीय ध्रुव की विकदम्ब संज्ञा है और विषुववृत्तीय ध्रुवों की दक्षिणोत्तर ध्रुव संज्ञा है। इस विषुववृत्तीय ध्रुव से सूर्य के परमक्रान्त्यंश तुल्य दूरी पर कदम्ब (क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव) बिन्दु है तथा इसी प्रकार विषुववृत्तीय ध्रुवबिन्दु से चन्द्रपरमक्रान्त्यंश तुल्य दूरी पर विकदम्ब (चन्द्रकक्षा-वृत्तकाध्रुव) बिन्दु होगा। यह कदम्ब तथा विकदम्ब बिन्दु दक्षिणोत्तर ध्रुव की तरह उत्तर तथा दक्षिण की और दोनों दिशाओं में १८० अंशों के अन्तराल पर होते हैं। भूकेन्द्र से होकर जाने वाली कदम्ब तथा विकदम्बद्वयगत रेखा को क्रमशः कदम्ब सूत्र विकदम्ब सूत्र कहते हैं। सूर्य तथा चन्द्र के परम क्रान्त्यंश का अन्तर विकदम्ब से कदम्ब तक का परमशर तुल्य अन्तर होगा और यही चन्द्रपरमशर है।

चूँकि कदम्ब सूत्र और विकदम्ब सूत्र परस्पर भूकेन्द्र पर एक दूसरे को काटते हैं अतः परमशर तुल्य कोणीय प्रमाण भूकेन्द्र पर अन्तरित होता है। इसलिए भूकेन्द्र से कदम्ब तक कदम्ब प्रोत वृत्तव्यासार्ध और भूकेन्द्र से विकदम्ब तक विकदम्ब प्रोत वृत्त व्यासार्ध तथा परम शरज्या से सरल जात्य त्रिभुज निर्मित होता है जो कि क्रान्तिवृत्त तथा चन्द्रकक्षावृत्त सम्पात (शरपात) से ९० अंशों की दूरी पर स्थित कदम्ब प्रोत वृत्तीय परमशरचाप और शराग्र शरमूल से शरपात तक के क्रान्तिवृत्त एवं चन्द्रकक्षा वृत्त खण्ड से उत्पन्न चापीय त्रिभुज की तीनों चाप भुजाओं की जीवा से निर्मित सरलजात्य त्रिभुज के तुल्य होता है।

भूकेन्द्र से सम्पात (शरपात) तक का व्यासार्ध चन्द्रकक्षावृत्त तथा क्रान्तिवृत्त के लिए उभयनिष्ठ होगा। इस पर पर्वान्त कालीन सपातचन्द्र भोगांश के अग्रबिन्दु से तथा भूछाया केन्द्र से निपातित लम्बरेखा क्रमशः सपातचन्द्रभुजज्या और भूछाया की भुजज्या होगी। भूकेन्द्र से भूछायाबिम्बकेन्द्र तक कल्पित क्रान्तिवृत्तीय व्यासार्ध पर पर्वान्त कालीन चन्द्रकेन्द्र से निपातित लम्बरेखा पर्वान्तकालीन चन्द्रशरज्या होगी। इस प्रकार से निर्मित जात्यत्रिभुज के क्रमशः शराग्रसक्त सपातचन्द्रभुजज्या बिन्दु से और शरमूलसक्त भूछाया-केन्द्रभुजांशज्याबिन्दु से उभयनिष्ठव्यासरेखासमानान्तरनिर्मित की गई उक्त रेखाएँ भूकेन्द्र से

परमशराग्रबिन्दु तथा परमशरमूल तन्दि तक जाने वाली व्यासर्ध रेखा पर लम्बवत् होंगी और दोनों लम्ब रेखाओं के बीच का पर्वान्तकालीन शरतुल्य अन्तर उतना ही होगा, जितना पर्वान्तकालीन चन्द्र और भूछाया केन्द्र के बीच होगा। यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिये कि जब एक रेखा दूसरी रेखा के किसी बिन्दु पर लम्बवत होती है तो वह बिन्दु जिस पर प्रथम रेखा लम्बवत् है लम्बमूल बिन्दु होता है। चूकि उक्त दोनों रेखाएँ उभयनिष्ठ व्यास रेखा समानान्तर हैं अत: पर्वान्तकालीन सपातचन्द्रभुजज्या तुल्य भुजज्या लम्बमूल से भूकेन्द्र तक होगी जो कि भूकेन्द्र से परमशराग्र तक जाने वाली कदम्ब प्रोतवृत्तीयव्यासार्ध पर होगी और यही व्यासार्ध चन्द्रकक्षा का भी होगा। भूकेन्द्र से पर्वान्तकालीन चन्द्र तक, परमशराग्र-बिन्दुतक तथा विकदम्ब तक की व्यासार्ध रेखाएँ और भूकेन्द्र से भूछायाकेन्द्रतक, परमशरमूल बिन्दु तक तथा कदम्ब तक की व्यासार्ध रेखाएँ समतुल्य होंगी।

शरपात से ९० अंश पर जितना अन्तर कदम्बप्रोतवृत्त में क्रान्तिवृत्त और चन्द्रकक्षावृत्त का होता है ठीक उतना ही अन्तर कदम्ब तथा विकदम्ब का भी होता है। चन्द्रबिम्बकेन्द्र शराग्र पर तथा भूछाया केन्द्र शरमूल बिन्दु पर होता है। भूकेन्द्र परमशराग्रबिन्दुगत व्यासार्ध रेखा पर स्थित सपातचन्द्रभुजज्या तुल्य चाप से भूकेन्द्र को केन्द्र मानकर एक वृत्त कल्पित करेंगे। यह वृत्त भूकेन्द्र से विकदम्बगत व्यासार्ध रेखा को जहाँ काटेगा उस बिन्दु से भूकेन्द्र तक का विकदम्बसूत्रखण्ड वास्तविक सपात चन्द्र भुजज्या तुल्य ही होगा। इस विकदम्ब सूत्रस्थ सपातचन्द्रभुजज्याग्रबिन्दु से कदम्बसूत्र पर डाला गया लम्ब पर्वान्त कालीन शर के तुल्य होगा। इस शरमूल बिन्दु को केन्द्र मानकर पर्वान्तकालीन भूछायाबिम्बव्यासार्ध से निर्मित वृत्त कदम्ब सूत्रस्थ भूछाया होगी। इस भूछायाबिम्बप्रान्त को स्पर्श करता हुआ, चन्द्रबिम्बव्यासार्ध तुल्य त्रिज्या से विकदम्ब सूत्र पर चन्द्रबिम्ब निर्मित करेंगे। इस चन्द्रबिम्बकेन्द्र से शरमूल स्थित भूछाया केन्द्र तक कल्पित रेखा बिम्बकेन्द्रान्तर रेखा होगी जिसको मनैक्यार्ध कहते है। भूछायाप्रान्त को स्पर्श करते हुए विकदम्बसूत्रस्थित चन्द्रकेन्द्र से कदम्बसूत्र परनिपातित लम्ब स्पर्शकालिक चन्द्रशरतुल्य होगा। चूँकि पर्वान्त कालीन शर तथा स्पर्शकालिक शर दोनों ही क्रमश: विकदम्ब सूत्र से कदम्ब सूत्र पर लम्बवत है तथा चन्द्रकेन्द्र विकदम्ब सूत्र पर तथा भूछाया केन्द्र कदम्ब सूत्र पर स्थित हैं। अत: इस स्पर्शकालिक शरमूल से भूछाया केन्द्रतक का कलाविकलात्मक प्रमाण कदम्बसूत्र पर स्थित्यर्ध प्रमाण होगा और पूर्ववत गत्यन्तर के साठवें भाग से भाग देने पर यह समयात्मक हो जाएगा जो कि चन्द्रकक्षास्थित स्पार्शिकचन्द्रशरमूल बिन्दु से क्रान्तिवृत्तस्थित भूछाया-केन्द्र तक के क्रान्तिवृत्तीय स्थित्यर्ध काल प्रमाण के तुल्य ही होगा।

अत: व्यासार्धीयमहद् वृत्तों की साम्यता एवं उनके मध्य पर्वान्तकालीन चापजात्यों तथा सरल ज्यात्यत्रिभुजों की साम्यता के कारण क्रान्तिवृत्तीय स्थित्यर्धप्रमाण और कदम्बसूत्र-स्थित्यर्ध प्रमाण के परस्पर तुल्य होने से इस स्थित्यर्ध की भास्कराचार्य ने कदम्बसूत्रस्थित्यर्ध संज्ञा की है। इस तथ्य को गोलयन्त्र पर भली-भाँति परीक्षणोपरान्त सुविधापूर्वक जाना जा सकता है। परन्तु पर्वान्तकालीन उक्त तुल्यता तभी सम्भव है जब की मन्दफल से संयुक्त मन्दस्पष्ट चन्द्र में प्रथम चरबीज फल (Evection) तथा द्वितीय चरबीज फल (Veriation) को भी ऋणधनत्वानुसार संयुक्त किया गया हो।

ग्रहण का मध्य पर्वान्तकाल में होता है और यह पर्वान्तकाल स्थित्यर्धकाल और स्पर्शकाल के योगतुल्य होता है। यदि चरबीजफलद्वय से पूर्णत: सूक्ष्मी कृत स्पष्टचन्द्र के

अतिरिक्त, मात्र मन्दस्पष्टचन्द्र से ही यदि पर्वान्त (पूर्णिमान्त, अमान्त) काल लाकर उसके द्वारा स्थित्यर्धकाल लाते हैं तो कदम्बसूत्रस्थित्यर्ध काल और स्पर्शकाल के योग तुल्य पर्वान्त काल में ग्रहणमध्य दृष्टिगोचर नहीं होता।

सूर्यग्रहेचन्द्रसमागमादौ तत्कालतिथ्यंशविशेषसाध्यम्।
यल्लम्बनं तेन च सूक्ष्मखेटैस्तिथ्यादिकंनित्यमिहप्रसाध्यम्॥ ३७॥

वासनाभाष्य–अथेदानीं सूर्यग्रहणादीनामपि स्फुटतिथिसापेक्षत्वात् सूक्ष्मग्रहेणैव तिथ्याद्यानयनमावश्यकमित्याह सूर्यग्रह इति। स्पष्टम्॥

भाषा–सूर्यग्रहण में चन्द्र की संयुति के आरम्भ में तात्कालिक तिथ्यंशान्तर और उससे जो लम्बन साध्य होता है वह सूक्ष्म ग्रह से ही होता है। यह तिथ्यादि प्रमाण भी नित्य (प्रतिदिन) सूक्ष्म ग्रह से भलीभाँति साधित करना चाहिए। अर्थात दैनिकतिथ्यादि का आनयन भी चरबीज संस्कृत सूक्ष्म चन्द्र के द्वारा ही करना चाहिए।

यदि च लम्बनसंस्कृतखेटतस्तिथिमुखानयनं परीचोद्यते।
बधिर तर्हि तव श्रुतिगोचरं वितथमेव हि लम्बनशासनम्॥ ३८॥

वासनाभाष्य–अथेदानीं लम्बनादि संस्कृतग्रहस्यैव अतिसूक्ष्मत्वात् तेनैव तिथ्यादिकं साधनीयमिति शंकामुपहसन्नाह यदि चेति। तिथ्यन्ते लम्बनविधानं व्यर्थमेवेत्यर्थः।

भाषा–और यदि लम्बन संस्कृत ग्रह (चन्द्रसूर्य) से तिथि के आरम्भ काल का आनयन होता है ऐसा कहते हैं तो हे बधिर तुम्हारे कानों में लम्बन के नियम सिद्धान्त व्यर्थ ही सुनाई पड़ें।

विज्ञानभाष्य–चूँकि तात्कालिक तिथिगत्यन्तरोत्पन्न लम्बन काल से ऋणधनत्वकृत अमान्तकाल सूर्यग्रहण में स्फुटसूक्ष्म अमान्त होता है क्योंकि गत्यन्तर का १५वाँ भाग परम लम्बन होता है और तात्कालिक लम्बन त्रिभोनलग्न सूर्यान्तरांशोत्पन्न होता है इसका समयात्मक मान लम्बन काल है। इस लम्बन काल को सूर्यग्रहण के अवसर पर अमान्त काल में धन ऋण कर सूक्ष्म अमान्त काल लाते है और पुनः सूक्ष्म अमान्त काल में सूर्य चन्द्रको घटिकादि लम्बनकाल गुणित स्फुटगति तुल्य चालन फल से धनऋण कर स्पष्ट करते हैं। स्पष्टसूर्यचन्द्रका अन्तर ही तिथ्यंश (अंशात्मकतिथि) होता है तथा दो दिनों के तिथ्यंश का अन्तर तिथ्यंशान्तर (तिथिगति) होता है। इसके तात्कालिक प्रमाण से उत्पन्न लम्बन की सूक्ष्मता चरबीज संस्कृत सूक्ष्म चन्द्र पर ही आधारित है। सूर्यग्रहण में तो भूकेन्द्रीय संयुति गणितागत अमान्तकाल में हो जाती है परन्तु भूपृष्ठीय संयुति दृश्य नहीं हो पाती अतः अमान्तकाल में भूकेन्द्रीय भूपृष्ठीय अमान्तान्तर तुल्य लम्बन काल का धनऋणात्मक संस्कारकरते हैं। और यही अमान्त सूर्यग्रहण में स्फुट अमान्त होता है।

उपर्युक्त व्यवस्था को देखते हुए कोई व्यक्ति यह कहे कि लम्बनादि संस्कारयुक्त ग्रह के ही अतिसूक्ष्तम होने के कारण उसी के द्वारा ही तिथि नक्षत्रयोगकरणादि का साधन करना चाहिए तो समझना चाहिए कि उस व्यक्ति को लम्बन विधान एवं उसके सिद्धान्तों की व्यापक संज्ञानिता नहीं हैं। अर्थात् कोई भी विद्वान अथवा ग्रहणगणितकर्ता जो कि लम्बनादि के सिद्धान्तों को भली भाँति जानता होगा कभी भी लम्बन संस्कृत सूर्यचन्द्रान्तरांश से तिथ्यादि का साधन नहीं करेगा क्योंकि लम्बनादि का संस्कार मात्र सूर्य ग्रहण में आमान्ताकल को स्पष्टसूक्ष्म करने के लिए ही करते हैं तिथ्यादि साधन में नहीं।

येषां हि भूमौ युगपत्प्रवृत्तिस्तेषां तु नेष्टं नतिलम्बनाद्यम्।
ये सदिहन्त्यत्र[१] शशिग्रहं ते विलोक्य विस्त्रब्धहृदोभवेयुः॥ ३९॥

वासनाभाष्य—लम्बनादिकं विनैवानीतस्य चन्द्रोपरागस्य, तन्मध्यकालविशेषावसानस्य शुद्धपर्वान्तस्य च युगपत्प्रवर्तमानस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात् सलम्बनं तदानयने नितरां दृग्वैषम्याच्च तद्दृष्टान्तेन युगपत्प्रवर्तमानानां नक्षत्रयोगकरणानां सर्वेषां लम्बनादिकरणं दोष इति सिध्यत्येवेति स्पष्टम्॥

भाषा—जिनके भूमि पर चन्द्रोपराग, शुद्धपर्वान्त, ग्रहणमध्यकालादि की प्रवृत्ति एकसाथ होती है उनके लिए नति लम्बनादि संस्कार अभीष्ट नहीं हैं। जो यहाँ पर चन्द्रग्रहण को देखकर सन्देह करते हैं वे आश्चर्यचकित होते रहें।

तिथ्यादिकानां युगपत्प्रवृत्तिर्नैवोपगम्येति यदि ब्रवीषि।
तदा तु देशान्तरसंस्क्रियैषां मुधैवभूयात गणाकोपनीता॥ ४०॥

यन्मेरुलङ्कापुरमध्यसूत्रं ततः स्वदेशान्तरनिर्णयोऽपि।
विधुग्रहे नो यदि यौगपद्यं महात्मभिस्तेन कथं कृतः स्यात्॥ ४१॥

वासनाभा.—अथेदानीं तिथ्यादीनां युगपत्प्रवृत्त्यनभ्युपगमे दोषमाह तिथ्यादिकानामिति स्पष्टम्।

भाषा—तिथ्यादिका प्रारम्भ एक साथ नहीं हो सकात ऐसा यदि कहते हो तो देशान्तर संस्कार जो गणितज्ञों द्वारा किया जाता है वह व्यर्थ ही हो जाएगा। मेरु (दक्षिणोत्तरध्रुव) से लङ्कापर्यन्त गया हुआ जो भूमध्य सूत्र है उससे अपने अपने देशान्तर का निर्णय किया जाता है। उससे यदि चन्द्रग्रहण में एककालता (समकलकालिकता) न हो तब प्राचीन विद्वानों के द्वारा इस देशान्तर संस्कार का आनयन व्यर्थ ही कहा जाएगा।

भूमध्यदेशात् गणितं तु येषां तेषां हि भूमौ युगपत्प्रवृत्तिः।
भूमध्यदेशान्नहिलम्बनंस्याद्यल्लम्बनं पृष्ठतले प्रयोज्यम्॥ ४२॥

वासनाभाष्य—अथेदानीं युगपत्प्रवृत्तिरस्तु। लम्बनादिनैरपेक्ष्यं मास्त्विति शङ्कायामाह भूमध्येति।

भाषा—जिनका भूकेन्द्रीय ग्रह गणित है उनके ही भूमि पर एक साथ प्रवृत्ति होती है। भूमध्य स्थान पर लम्बन नहीं होता है, जो लम्बन होता है वह भू पृष्ठ तल पर प्रयुज्य होता है।

यतः क्वर्द्धोच्छ्रितो द्रष्टा चन्द्रंपश्यति लम्बितम्।
साध्यते कुदलेनातो लम्बनं च नतिस्तथा॥ ४३॥

वासनाभाष्य—लम्बनावनत्योः पृष्ठप्रयोज्यतामुपपादयति यत इति। इदं सर्वं गोले कथितमेव। तथा मन्दजनानुजिधृक्षया पुनरत्राप्युच्यते। इदमत्र छेद्यकम्।

भाषा—चूँकि भूव्यासार्ध तुल्य ऊँचाई पर स्थित द्रष्टा (प्रेक्षक) चन्द्रमा को लम्बित स्थिति में देखता है इसलिए लम्बन और नति का आनयन भूव्यासार्ध प्रमाण से करते हैं। यथा छेद्यक द्वारा।

इष्टापवर्तितां पृथ्वीं कक्षे च शशिसूर्ययोः।
भित्तौविलिख्य तन्मध्ये तिर्यग्रेखां तथोर्ध्वगाम्॥ ४४॥

तिर्यग्रेखायुतौ कल्प्यं कक्षायांक्षितिजं तथा।
ऊर्ध्वरेखायुतौ खार्द्धं दृग्ज्याचापांशकैर्नतौ॥ ४५॥

---

१. न्त्यत्र।

कृत्वार्केन्दू समुत्पत्तिं लम्बनस्य प्रदर्शयेत्।
एकं भूमध्यतः सूत्रं नयेच्चण्डांशुमण्डलम्॥ ४६॥
अमान्तसूत्रं तद्विन्द्यात तत्र सूर्येन्दुसङ्गमात्।
द्रष्टुर्भूपृष्ठगादन्यत् दृष्टिसूत्रं तदुच्यते॥ ४७॥
कक्ष्यायां सूत्रयोर्मध्ये यास्ता लम्बनलिप्तिकाः।
गर्भसूत्रे सदा स्यातां गततिथ्यंशलिप्तिके॥ ४८॥
स्यातामममान्तसूत्रेऽतश्चन्द्रार्कौ समलिप्तिकौ।
द्रष्टुः क्वर्धान्तरस्यास्य गर्भात् खार्धनते रवौ॥ ४९॥
दृक्सूत्राल्लम्बितश्चन्द्रस्तेन तल्लम्बनं स्मृतम्।
दृग्गर्भ सूत्रयोरैक्यात् खमध्ये नास्ति लम्बनम्॥ ५०॥
स्थितिस्तत्रैव खेटानां दृश्यते परमार्थिकी।

वासनाभाष्य–इदं सर्वं प्रायशो गोलाध्याये स्वरूपमात्रं व्याख्यातम्। अत्रापि वैशद्याय किञ्चिदुच्यते। भूगर्भात् भूव्यासार्धपरिमितोच्छ्रायवति भूपृष्ठे स्थितो द्रष्टा स्वकक्ष्यायां परमार्थतः स्वस्थानस्थितमपि ग्रहं द्रष्टुर्देशभेददोषात् स्वस्थानान्नतमिव दृङ्मण्डलेपश्यति। अतः तद्ज्ञानार्थं पृथ्वीव्यासार्धयोजनानि तत्तद्ग्रहकक्ष्याव्यासार्धयोजनानि च यथालाघव-मेकेनैव हरेण हृत्वा तत्फलप्रमाणव्यासार्धकं भूमण्डलं कक्ष्यामण्डलानि भमण्डलं च वृत्तं यथाक्रमं विलिखेत। तत् कथम्। श्लक्ष्णायां पूर्वापरायतायां भित्तौ उत्तरपार्श्वे बिन्दुं कृत्वा तस्मात् बिन्दोः पूर्वोक्तेन भूव्यासार्धछेदफलमिताङ्गुलव्यासार्धेन भूपरिधिं विलिखेत्। तदेव वृत्तं पृष्ठरेखां जानीयात्। अथ यन्मध्ये बिन्दुः तमेवगर्भं जानीयात्। अथ भूगर्भबिन्दुमेव नाभिं कृत्वा तत्तत्कक्ष्याव्यासार्धैः ग्रहकक्ष्यामण्डलानि भमण्डलं च वृतं विलिखेत। तस्मादेव भूगर्भात् मकरस्य मुखान्युत्पाद्य ऊर्ध्वरेखा तिर्यग्रेखा च कार्या। तिर्यग्रेखा यत्र कक्ष्यायां पूर्वापरदिशोर्लगति तत्र क्षितिजं कल्प्यम्। एवमूर्ध्वरेखा यत्र भकक्ष्यायां लगति तत्र खमध्यं कल्प्यम्। एवं चन्द्रकक्ष्यायां रविकक्ष्यादिषु च प्रत्येकं खमध्यं कल्प्यम्। ताश्च कक्ष्याः भगणांशलिप्ताविलिप्ताभिः यथायोग्यमङ्कनीयाः। तत्रभकक्ष्यायां किंचित् स्थानं भगणादित्वेन परिकल्प्य, तत्र रेवती योगताराचिन्हं दद्यात्। ततश्च भध्रुवोक्तप्रकारेण अश्विन्यादि योगताराश्च यथास्थानमङ्कयेत्। अथ या ग्रहकक्ष्याः ता एव ग्रहाणां दृङ्मण्डलानि। अथ इष्टकाले अर्कस्य वा अन्यस्य वा ग्रहस्य या दृग्ज्या तच्चापांशैः खमध्यान्नतो बिन्दुः तत्कक्ष्यायां कार्यः। एवं चन्द्रकक्ष्यायामपि तावद्भिरेव नतांशैः कार्यः। ते बिन्दव एव ग्रहामन्तव्याः। अथ भूमध्यात् भमण्डलपर्यन्ता तत्तद्ग्रहमध्यगामिनी रेखा कार्या। सा रेखा दर्शान्ते दर्शान्ते चन्द्रसूर्यमध्यं भित्वा तत्कालं भमण्डले यस्मिन्नक्षत्रे यावद्भागलिप्ताविलिप्तासु सूर्यचन्द्रौतिष्ठस्तत्रैव गच्छेत। शुक्लप्रतिपदन्ते सूर्यात्पुरतः द्वादशभागान्ते तत्कक्ष्यां भित्वा भमण्डले यावदंशे तात्कालिकश्चन्द्रस्तिष्ठति तत्रैव भूगर्भात् चन्द्रनाभिकं सूत्र पतेत्। एवं शुक्लद्वितीयान्ते चतुर्विंशतिभागान्ते। एवमन्यदपि तिथिभोगमानेनैव ज्ञातव्यम्। एवं चन्द्रेण सह अन्यग्रहग्रासकालेऽपि भूगर्भादेव तत्तद्ग्रहगामिनीः रेखाः कुर्यात। ताश्च रेखाः चन्द्रं ग्रहं च भित्वा तत्काले तौ परमार्थतः भमण्डले यस्मिन्नक्षत्रे यावदंशलिप्तासुतिष्ठतस्तत्रैव पतेयुः। अथभूपृष्ठगात् द्रष्टुरन्या रेखा रविबिन्दुं तत्तद्ग्रहबिन्दून् वा नेया। सारेखा चन्द्रे न लगति। दूरकक्ष्यात्वात् द्रष्टुः कुदलोच्छ्रितत्वाच्च। अथ तयोः भूपृष्ठतदगर्भसूत्रयोरन्तरे चन्द्रकक्ष्यायां

यावदंशलिप्ताविलिप्तादिकं ता एव लम्बनलिप्तादिकं ज्ञेयम्। इदं तु लम्बनं ग्रहाणामुच्चकाले चन्द्रस्यनीचस्थितौ परमोपचितं भवति। विपर्यये परमापचयः। उपचयापचयौ क्षितिज एव परीक्षणीयौ। एवमेव गततिथ्यंशानां भांशानां च लम्बितचन्द्रान्तरं दर्शनीयम्। तद्यथा। भूगर्भात् सूर्य कक्ष्यायां सूर्यबिन्दोः गततिथ्यंशान्तगामिनी रेखा कार्या। सा रेखा चन्द्रनाभिं गततिथ्यंशान्तं च भित्वा भमण्डलं गच्छेत्। अथ भूपृष्ठात् गततिथ्यिंशान्तगामिनीं रेखां कुर्यात्। सा खार्धान्नते चन्द्रे न लगति। खार्धस्थे तु चन्द्रे तन्मध्यगामिन्याभूपृष्ठरेखायाभूगर्भरेखायाश्च अन्तराभावात् लम्बनं नास्त्येव। एवमेव गतभांशेष्वपिद्रष्टव्यम्। अत्र यत्तावत् भूपृष्ठात् खार्धान्नतं ग्रहं गच्छति ततूसूत्रं दृक्सूत्रमुच्यते। तत्तु द्रष्टुः प्रत्यायकमेव। यत्तावत् भूगर्भात् ग्रहं गच्छति तदेव पारमार्थिकग्रहस्थानवेधि। तत्र च हेतुः। "भूमेर्मध्येखलुभवलयस्यापिमध्यमिति" पूर्वोक्तमेव। अथ यत्तावत् भूपृष्ठात् खमध्यस्थान् ग्रहान् गच्छति तस्य सूत्रस्य भूपृष्ठसूत्रत्वेऽपि तत्र कुदलोच्छ्रायायत्तान्तरस्य हान्या तस्यैव भूगर्भसूत्रत्वापत्तेः प्रत्यक्षत्वात्तदपिपारमार्थिक ग्रहवेधकमेव। अतस्तेनैव स्पष्टाग्रहाः तिथ्याद्यंशाश्च वेधनीयाः। तदेवं लम्बनस्य भूपृष्ठप्रयोज्यत्वेन भूमध्यदृक्तुल्यत्वेनानीतस्पष्ट-ग्रहसाध्यानामत एव युगपत्प्रवर्तमानानां तिथ्यादीनां न लम्बनसंस्कारप्रसक्तिः।

भाषा—किसी अभीष्ट संख्या से भूव्यासार्ध तथा सूर्य चन्द्र के कक्षा व्यासार्धो में अपवर्तन देकर पूर्वापरस्थिती में स्थित भित्ती (दीवाल) के उत्तरपार्श्व में अपवर्तनाङ्क तुल्य प्रमाण में सूर्य चन्द्र की कक्षाओं को तथा भूव्यासार्ध को अंकित कर उसके मध्य में तिर्यक रेखा तथा ऊर्ध्वाधर रेखा निर्मित करें। सूर्य चन्द्र की कक्षाओं में तिर्यक् रेखा योग पर क्षितिज कल्पित करें तथा ऊर्ध्वाधर रेखा योग पर खमध्य कल्पित करें। इस खमध्य से दृग्ज्याचापांश तुल्य दूरी पर स्वस्वकक्षा में नतांश अंकित कर इस पर सूर्य चन्द्र कल्पित कर लम्बन की सम्यक् उपपत्ति प्रदर्शित करें। भूकेन्द्र से एक सूत्र (रेखा) सूर्यमण्डल तक ले जाएँ। उक्त स्थान पर सूर्य चन्द्र की संयुति होने से यह सूत्र अमान्त सूत्र होगा। द्रष्टा के भूपृष्ठस्थान से एक अन्य सूत्र जो सूर्यमण्डल तक जाएगा उसे दृष्टिसूत्र कहते है। इन दोनों सूत्रों के मध्य चन्द्र कक्षा में जो कला होगी वह लम्बन कला होगी। गर्भ सूत्र में सदा गततिथ्यंशकलाएँ होती हैं अतः अमान्तसूत्र पर सूर्य और चन्द्र का कलाविकलात्मक प्रमाण समतुल्य होता है। प्रेक्षक के भूव्यासार्धन्तर का इसके गर्भ से (भूकेन्द्र से) खमध्यनत सूर्य के दृक्सूत्र से चन्द्र लम्बित होता है इसके कारण इसको लम्बन कहा गया है।

खमध्य में दृक्सूत्र और गर्भ सूत्र के एकाकारहोने से उक्तस्थान पर लम्बन नहीं होता है। अर्थात जब सूर्य चन्द्र दोनों खमध्य से नत होंगे और वह भी भूव्यासार्धान्तर पर स्थित प्रेक्षक के भूकेन्द्र से नत होंगे तब दृक्सूत्रस्थसूर्य से चन्द्रलम्बित अवस्था में दृश्य होता है। खमध्य स्थित सूर्य तक जाने वाला भूकेन्द्रीय और भूपृष्ठीयसूत्र एकधरातलगत होने से एकाकार हो जाता है अतः सूर्य से चन्द्र लम्बित हुआ नहीं दीखता अतएव खमध्य में लम्बन उत्पन्न नही होता। वहीं पर ग्रहों की पारमार्थिक स्थिति दिखाई पड़ती है।

भूपृष्ठ सर्वदेशानां मध्यमेव यतः समम्।
तत्तुल्यखेचरानीतं तिथ्याद्येववरं ततः॥ ५१॥

वासनाभाष्य—अथेदानीं भूमध्यदृक्तुल्यस्फुटानीतानां तिथ्यादीनामेव सार्वत्रिकानुष्ठानार्हत्वे हेतुमाह भूपृष्ठेति। वरं सर्वदेशावच्छेदेनाप्यनुष्ठातुं योग्यमिति अर्थः।

भाषा—चूँकि भूपृष्ठीय सभी देशों में भूकेन्द्रीय ग्रहस्थिति समान होती है इसलिए उसके तुल्य ग्रह से तिथ्यादि का आनयन अर्थात भूकेन्द्रीय सूर्य चन्द्रग्रह से आनीत तिथि नक्षत्रादि ही श्रेष्ठ हैं (योग्य हैं)।

ग्रस्तास्त सूर्य ग्रहणे शुक्लपक्षे तु पैतृकम्।
विशेष वचनैरेव न तु पर्वान्त सतया॥ ५२॥

वासनाभाष्य—अथेदानीं ग्रस्तास्तगाम्यर्कग्रहे पैतृकार्हकृष्णपक्षस्य लम्बनसंस्कृतग्रहानीतस्यैव ग्रहणदर्शनाल्लम्बनसंस्कृता तिथिरपि ग्राह्यैवेत्याशङ्कायामाह ग्रस्तास्तइति। विशेषवचनैः 'ग्रस्यमाने दिवाकरे' इत्यादिभिः ग्रासदर्शनकालस्यैव तत्कर्माङ्गतांविदधद्भिः विशेषशास्त्रै-रेवेत्यर्थः। पर्वान्तसत्तया न! लम्बनसंस्कृतग्रहानीतपर्वान्तसत्ताप्रयुक्तं नेत्यर्थः।

भाषा—सूर्यग्रहण में ग्रस्तास्त होने पर तथा शुक्लपक्ष में पितृक्रिया किए जाने के सम्बन्ध में विशेष परिस्थिति जन्य विधान मुनियों द्वारा निर्णीत किए गए हैं वे वचन पर्वान्त के निर्धारण हेतु नहीं हैं। अर्थात् विशेष वचनों का प्रयोग पर्वान्त स्थिति के निरूपण में प्रयुक्त नहीं होते।

अवनत्यादिभिर्यस्मान्नभिद्यन्तेस्फुटग्रहाः।
पूर्वापरान्तराभावात्तन्नेष्टा इह तत्क्रियाः॥ ५३॥

वासनाभाष्य—अथेदानीं तिथ्यादिषुमास्तुलम्बनम्। अवनत्यादिसंस्काराः कार्या एवेत्यत्राह अवनत्यादिभिरिति। अवनत्यादीनां दिक्षणोत्तरान्तरमात्रहेतुतया कदम्बसूत्रदृश्यानां स्फुटानाम-भेदकत्वात् अवनतिकर्माक्षकर्मायनकर्मादिकं शुद्धग्रहस्फुटसाध्येषु तिथ्यादिषु प्रयोजनाभावान्न कार्यमित्यर्थः।

भाषा—अवनति आदि कर्म जिसका स्फुट ग्रहों में संस्कार नहीं होता है अर्थात् शुद्धग्रह की स्फुट साध्यता में अवनति आदि कर्मों का संस्कार नहीं करते हैं। यह क्रिया पूर्वापर अन्तर का अभाव होने से यहाँ पर अभीष्ट नहीं हैं।

भनेमिके द्वादशराशिभक्ते कक्षान्वितारे क्षितिगर्भनाभौ।
चक्रे ग्रहा विश्वसृजानिविष्टा उपर्युपर्यश्विकमध्यसूत्रे॥ ५४॥

वासनाभाष्य—निविष्टाः नेविशिता इत्यर्थे। शिष्टं स्पष्टम्।

भाषा—बारहराशियों से विभाजित नक्षत्रपरिधि के तत् तत् नक्षत्रगत सूत्र से संयुक्त नक्षत्र कक्षा केन्द्र को भूगर्भ केन्द्र पर स्थापित कर इसके चारों ओर ग्रहकक्षा को निर्मितकर अश्विनी नक्षत्र गत भूमध्य सूत्र पर एक के उपर एक यथा क्रमानुसार ग्रहों को विश्वस्रष्टा (ब्रह्मा) ने निवेशित किया।

ततो ध्रुवेण प्रवहाख्यपाशैरुच्चैश्चपातैश्च विकृष्यमाणाः।
तथा तथा यान्ति गतीर्विभिन्नाः कल्पावसानेषुसमाभवेयुः॥ ५५॥

अतः कुमध्याद्गतखार्ध सूत्रे दृक्तुल्यतामेतिनभश्चरोयः।
स एव शुद्धः परमार्थतः स्या[1]... स्फुटस्ततोऽन्यः॥ ५६॥

१. मुद्रित मूल पुस्तक में वाक्यखंड नहीं है जिसकी पूर्ति श्रीचिन्तामणि रघुनाथाचार्य ने स्वप्रणीत 'शुक्रग्रस्तविचित्रसूर्योपराग' नामक पुस्तक में की है जिसका संस्कृतानुवाद गोविन्दपुरवास्तव्य सुन्दरेश्वर श्रौति द्वारा किया गया है। मूल पुस्तक द्रविड़ भाषा में है। पूर्तवाक्यखंड के साथ श्लोक की अंतिम पंक्ति इस प्रकार है—**स एव शुद्धः परमार्थतः स्यात् स्फुटस्ततोन्ये विहगास्त्वतथ्याः।**

वासनाभाष्य—अथेदानीं खमध्ये दृश्यमानस्य भूमध्यदृक्तुल्यग्रहस्यैव पारमार्थिकत्वे हेतुमाह भनेमिक इति। ग्रहा हि नाम अन्योन्यं बहुयोजनान्तरितासु स्वस्वकक्ष्यासु ऊर्ध्वाधोभावेन परस्परावर्तनभिन्नमेव भ्रमन्ति। तेषामुपरि दूरे भगणाः। अतो ग्रहाणां भगणोपरि साक्षात स्थितिर्नसम्भवति। किन्तु भगणाश्रितनेमिकत्वात् भगणनामकं चक्रं निर्माय तस्य नाभिं भूगर्भे संयोज्य तदुदरमध्ये परितः ग्रहकक्ष्या यथाक्रमं स्थापयित्वा शकटचक्रवत् स्थापितं तन्नेम्याश्रितं भमण्डलं द्वादशधा विभज्य प्रतिभागमंशलिप्ताविलिप्तादिकं च विभज्य भूमध्यस्थित नाभिदेशात् प्रतिविलिप्तं सूत्राणि नीत्वा बद्धानि। तेषु यदश्विनीमुखे रेवतीनक्षत्रे बद्धं सूत्रं तस्मिन्नेवोपर्युपरि प्रोतामणिवरा इव चन्द्रादयो ग्रहा सृष्ट्यादौ ब्रह्मणा निवेशिताः। एवं समस्त-ग्रहभमण्डलाश्रितं भचक्रं प्रत्यङ्मुखं विधिनैव भ्रामितं भ्रमति। तत्र भचक्रारगते तत्तद्ग्रह-कक्ष्यामण्डले भूगर्भस्थभचक्रनाभिदेशात् तन्नेम्याश्रित भगणराश्यंशलिप्ताविलिप्तागतानि सूत्राणि यत्र यत्र पतन्ति तानि तत्र तत्रैव तत्तद्भगणराश्यंशलिप्ताविलिप्ताकाष्ठेति तत्तत्स्थान-स्थितिरेव तत्तद्ग्रहाणां भगणराश्यंशलिप्तागतिर्नाम। तस्मात् परमार्थतो ग्रहस्थितिरेवंविधत्वात् भूमध्यदृक्तुल्यानां खार्धस्थानपरीक्षितानामेवसकलकर्माङ्गकालानयनार्हत्वमित्युपपन्नम्।

भाषा—इसके अनन्तर ग्रह स्थिरप्रमाण से प्रवह नामक पाश के द्वारा और अपने-अपने उच्च के द्वारा और पातों के द्वारा विकृष्यमाण (विकर्षण को प्राप्त होकर) होते हैं और विकर्षित होते हुए वैसे-वैसे भिन्न भिन्न गतियों से स्वकक्षा में गमन करते है। भिन्न गतिवशात भगणादिमानभिन्नता होने पर भी कल्पावसान (सृष्ट्यन्त) में समान हो जाते हैं अर्थात् पुनः अश्विनी नक्षत्र गत भूकेन्द्रीय रेखा पर समस्त ग्रह अवस्थित हो जाते हैं। अतः जो ग्रह भूमध्य से खमध्यगत सूत्र पर दृक्तुल्यता को प्राप्त होते हैं वह ही शुद्ध पारमार्थिक ग्रह होते हैं तथा कर्माङ्गकाल के आनयनार्थ स्फुट होते हैं।

ज्योतिर्गणे शास्त्रपथातिवृत्तौयद्ब्रह्महत्यांमुनयोवदन्ति।
नित्यं ग्रहाणामहरर्धकाले निर्णेयमेतत्तुपरीक्ष्यदक्षैः॥ ५७॥

वासनाभाष्य—इदं सर्वमवश्यं परीक्ष्य निर्धार्यमित्याह ज्योतिर्गण इति। "ज्यौतिषं व्यवहारं च प्रायश्चित्तं चिकित्सकम्। बिना शास्त्रेण यो ब्रूयात तमाहुर्ब्रह्मघातकम्॥" इतिमुनयो वदन्तीतिशिष्टं स्पष्टम्। तदेवं बीजसंस्कृतग्रहस्य कर्मानुष्ठानार्हसूक्ष्मकालानयनमेवप्रयोजनमिति प्रतिपादितम्।

भाषा—प्राचीन ऋषि मुनियों की यह मान्यता है कि शास्त्रीय मार्गों का अतिक्रमण करने पर ज्योतिषी समुदाय को ब्रह्महत्या का दोष लगता है। अत एव प्रतिदिन दिनार्ध के समय (याम्योत्तर-लङ्घनकाल) में कुशल गणितज्ञज्योतिषीद्वारा ग्रहों का परीक्षण कर ही निर्णय करना चाहिए।

शिखामयूरस्यमणिर्महाहेर्यथा तथेदं सकलागमानाम्।
तस्मादसांवत्सरवासिनां वै न देयमेतत् परमं रहस्यम्॥ ५८॥

वासनाभाष्य—अथेदानीं बीजोपनयस्यातिरहस्यत्वात् गोप्यतमत्वमुक्त्वा निगमयति शिखा-मयूरस्येति। तदेतत् स्पष्टं सूर्योक्तमेव। यथा बीजोपनयाध्यायादौ।

यथाशिखामयूराणां नागानां मणयोयथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्ध्निसंस्थितम्॥ १॥

नदेयं तत कृतघ्नाय वेदविप्लावकाय च।
अर्थलुब्धाय मूर्खाय साहंकारायपापिने ॥ २ ॥
एवंविधायपुत्रायाप्यदेयं सहजाय च।
दत्तेन वेदमार्गस्य समुच्छेदः कृतो भेवत् ॥ ३ ॥
व्रजेतामन्धतामिस्रं[१] गुरुशिष्यौ सुदारुणम्।
ततः शान्ताय शुचये ब्राह्मणायैव दापयेत् ॥ ४ ॥ इति अन्ते च।
एतद् बीजं मयाख्यातं प्रीत्या परमया तव।
गोपनीयमिदं नित्यं नोपदेश्यं यतस्ततः ॥ १ ॥
परीक्षिताय शिष्याय गुरुभक्ताय साधवे।
देयं विप्राय नान्यस्मै प्रीतिकञ्चुकधारिणे ॥ २ ॥
बीजं निःशेषसिद्धान्तरहस्यं परमं स्फुटम् ॥ इति ॥

भाषा—जिस प्रकार मयूर की शिखा महत्वपूर्ण होती है तथा मणि सर्प की मणी श्रेष्ठ होती है इसी प्रकार यह बीज कर्म की क्रिया सम्पूर्णशास्त्र में श्रेष्ठ है अतः जो दैवज्ञ न हों उनको इस श्रेष्ठ रहस्यज्ञान को नहीं देना चाहिए।

कथितमकथितं वा यप्यदत्राज्ञभावा-
न्निजसहनदयार्द्रैः सज्जनैः क्षम्यतां तत्।
शिरसिकरतलाभ्यामञ्जलिं कल्पयित्वा
विनयभरविनम्रो याचयेऽहं प्रणम्य ॥ ५९ ॥

भाषा—उपर्युक्त श्लोक के माध्यम से भास्कराचार्य ने अपने इस बीजोपनयाधिकार में भूलवश अज्ञभाव से यदि जो कुछ भी कहा गया अथवा नहीं कहा गया हो, उसके लिए अन्य सज्जन सहनशील विद्वज्जनों से प्रार्थनापूर्वक क्षमायाचना की है। भावार्थानुरूप श्लोकार्थ स्पष्ट है।

अन्त में, इस बीजोपनयाध्याय के श्लोकों की हिन्दी भाषानुवाद और कतिपय विशिष्ट श्लोकों पर विज्ञानभाष्य मेरे द्वारा निर्मित किया गया है। यदि उसमें कुछ त्रुटियाँ हों तो विद्वत् वैज्ञानिकजन अन्यथा न समझते हुए सुधारणापूर्वक उसपर विचार करते हुए मुझ अकिंचन लघुविद् को क्षमा करेंगे।

॥ इति श्रीमाहेश्वरोपाध्यायसुतभास्कराचार्यविरचिते वासनाभाष्यमिताक्षरे
बीजोपनयाधिकारः समाप्तः ॥

+++

---

१. अन्धतामिस्र की सांख्य-सम्मत व्याख्या—

विषयसम्पत्तौ सम्भोगकाले य एव मृयतेऽष्टगुणैश्वर्याद्वा भ्रश्यते, ततस्तस्य महद् दुःखमुत्पद्यते, सोऽन्धतामिस्र इति। (सांख्यकारिका, गौडपादभाष्य)

अर्थात् उपलब्ध शब्दादि भोग्य विषयों के नष्ट होने की भयव्याप्ति को अन्धतामिस्र कहते है।

परिशिष्ट

भास्कराचार्य ने चन्द्रमा का परम वैषम्य ११२ कला बताया है जो कि प्रथम चर ७८ कला तथा द्वितीय चर ३४ कला का योग है। इसके आनयन का प्रकार (क्रिया विधि) पूर्व में बताया जा चुका है। आधुनिक पाश्चात्य खगोल विज्ञान में इसका प्रमाण ११०.२ कला बताया गया है, जो कि च्युतिसंस्कार ७४.४५ कला तथा तिथिसंस्कार ३५.७५ कला के योगतुल्य है। दोनों प्रमाणों में योगान्तरवशात् १.८ कला का अन्तर पड़ता है। इसका मूल कारण यह है कि भास्करीय प्रमाणानयनप्रकार के समीकरण संख्या एक में चन्द्रोच्चगति का आधा प्रयुक्त किया गया है जबकी आधुनिक प्रमाणानयन में सम्पूर्ण चन्द्रोच्चगति प्रयुक्त होती है। इसके आगे की क्रियाविधि समतुल्य है। प्रथम चरबीजसंस्कार, परमचन्द्रवैषम्य और तिथिसंस्कार के अन्तरतुल्य होता है। अतः सर्वप्रथम यहाँ उसी पर विचार करेंगे।

चन्द्रमा के मन्दकेन्द्र (Mean Anomaly) की गति, चन्द्रगति और चन्द्रोच्चगति के अन्तरतुल्य होती है इस गती (Motion) से चलते हुए चन्द्र को पृथ्वी की एक प्ररिक्रमा पूरी करने में २७.०९२५२०९६ दिन लगते हैं। सूर्य तथा चन्द्र की मध्यम गति का अन्तर तिथिगति (इनान्तरगति) है। इसके द्विगुणित प्रमाण में मन्दकेन्द्र गति घटा देने पर चन्द्रमा की सापेक्ष गति प्राप्त होती है। इस गती से चलते हुए चन्द्र को पृथ्वी की एक परिक्रमा पूरी करने में ३१.८११९४५०६ दिन लगते हैं। अर्थात् दोनों परिक्रमणकालों का अन्तर ४.७१९४२४१०२ दिन प्राप्त होता है। चन्द्रमा अपनी सापेक्षगति से चलते हुए उक्त ४.७१९ दिनों में जितनी अंशात्मक दूरी अतिक्रमित कर लेगा, उतने अंशप्रमाण, च्युतिफल (Evection) हेतु च्युति केन्द्रांश होंगे। यही प्रमाण त्रिज्या एवं सापेक्ष गति के अन्तरतुल्य भी होगा। इस च्युतिकेन्द्रांश की ज्या को चन्द्रमा के परममन्दफलज्या (Ecentricity) से गुणाकर गुणनफल को पुनः परममन्दफल में घटा देने पर च्युतिफल का प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

यथा

कालान्तर = ∆का

सापेक्षगति = गं

परममन्दफल = इ.

परमच्युतिफल = ∆इ.

अतः

इ - ज्या (∆का • गं) • इ = ∆इ. (च्युतिफल) १

अङ्कानुसन्धान

∆का = ४.७१९४२४१०२ (दिनों में)

गं = ६७८.९९०२३३३ (कला दशमलव में)

इ = ३७७.४६७९५७९ (कला दशमलव में)

अब, समीकरण १ से,

३७७'.४६७९५७९ - [ज्या (४.११४२४१०२ x ६७८.९९०२३३३) x ३७७'.४६७९५७९]

= ३७७'.४६७९५७९ - [ज्या (५३°.४०७३८१२१) x ३७७'.४६७९५७९]

= ३७७'.४६७९५७९ - [०.८०२८९४२७८ x ३७७'.४६७९५७९]

= ३७७'.४६७९५७९ - ३०३'.०६६८६३५

= ७४'.४०११ = Δइ (च्युतिफल)

निर्दिष्ट च्युतिकेन्द्राशंज्या का च्युतिफल ज्ञात करने की प्रक्रिया।

राश्यादि मध्यम चंद्र और राश्यादि चन्द्रोच्च का अन्तर कर इसमें राश्यादि मध्यमचंद्र और सूर्य के अन्तर का द्विगुणित प्रमाण घटा देंगे। अन्तरफल च्युतिकेन्द्रांश होगा। इसकी लघुरिक्थीय प्राकृतिक ज्यासारणी के द्वारा ज्यानयन कर परमच्युतिफल अथवा प्रथमचर बीजफल से गुणा कर देंगे। यदि ज्यानयन भास्करीय प्रकार से किया गया हो तो उक्त गुणनफल में त्रिज्या से भाग देंगे। प्राप्तफल इष्ट च्युतिफल होगा इस फल का धनऋणात्मक संस्कार मन्दफल के धनऋणात्मक प्रक्रियानुसार ही करेंगे।

भास्करीय ज्यानयनप्रकारानीतज्या और त्रिज्या का आनुपातिक प्रमाण अघुरिक्थीय प्राकृतिक ज्या प्रमाण के तुल्य ही होता है।

मध्यम चन्द्र = चं.

चन्द्र उच्च = उ

मध्यम सूर्य = सू.

च्युति केन्द्र = $के_१$

च्युतिफल = Δ इ.

इष्टच्युतिफल = $फ_१$

त्रिज्या = र

चन्द्र मन्दकेन्द्र = के = (चं.-उ)

चन्द्रसूर्यान्तर = इ (इनान्तर) = (चं.-सू)

अतः

$के_१$ = २इ-के

$ज्याके_१$ = ज्या (२इ-के)

$फ_१$ = ज्या (२ इ-के)•Δ इ.....................२

यदि $के_१$ = ५ अंश हो तो च्युतिफलानयन समीकरण दो के अनुसार निम्नवत होगा। परमच्युतिफल ७४.४०११' है तथा भास्करीय प्रथम चरबीजफल (च्युतिफल) ७८' है।

ज्या (५°) x ७४.४०११ = $फ_१$

= ०.०८७१५६ x ७४.४०११ = ६.४८४५ या ६.५ (कला प्रमाण में)

ज्या (५°) x ७८ = फ$_१$..............................२क

यहाँ पर "तत्त्वाश्विभक्ता असवः कला वा यल्लब्धसंख्यागतशिञ्जिनी सा।" इत्यादि भास्करीय प्रकार से ज्यानयन करेंगे।

ज्या (५°) = ज्या ३००'

२२५' +[(३०० - २२५) x २२४ ÷ २२५]

= २२५' +(७५ x २२४ ÷ २२५)

= २२५' + (१६८०० ÷ २२५)

= २२५' + ७४'।४०"

= २९९'।४०" = ज्या ५°

समीकरण २ क से,

२२९'।४० x ७८ ÷ ३४३८ = २३३७४ ÷ ३४३८ = ६'.७९८७२ = ६'.८

भास्करीय सारिणी द्वारा आनयन

प्रथम ज्या = २६४.४६१५४ ज्याके$_१$, प्रथमचरफल = ६'

द्वितीय ज्या = ६१७.०७६९२ ज्याके$_२$, द्वितीयफल १४

प्रथम द्वितीय का अन्तर ३५२'.६१५३८ और ८'

ज्या५° = २९९'।४०"

$$\frac{\text{ज्याके}_१ - \text{ज्या } ५° \times ८}{\text{ज्याके}_१ - \text{ज्याके}_२}$$ ३

उक्त समीकरण से,

ज्याके$_१$ = २६४.४६१५४

ज्याके$_२$ = ६१७.०७६९२

अतः

(२६४.४६१५४-२९९.६६६६६) x ८ ÷ ३५२.६१५३८

= ३५.२०५१२ x ८ ÷ ३५२.६१५३८

= २८१.६४०९६ ÷ ३५२.६१५३८

= .७९८७२

इस लब्धि को प्रथम चरफल में जोड़ने पर,

६'.००००० + ०.७९८७२

= ६'.७९८७२

= ६'.८

भास्करीय चरफल ६'.८ कला तथा आधुनिक च्युतिफल ६'.५ कला प्राप्त होता है दोनों में ०.३ कला का अन्तर है अर्थात १८ विकला का अन्तर प्राप्त होता है। यदि लघुरिक्थीय प्राकृतिक ज्या के द्वारा आनयन करते है तो यह अन्तर कुछ कम हो जाता है।

यथा,

ज्या ५° = ०.०८७१५६

परमचरफल = ७८′

अतः

०.०८७१५६ x ७८′ = ६.७९८१७

दोनों प्रमाणों में ०.०००५३ का अन्तर हो जाता है जो कि नगण्य हैं।

अब पाक्षिक संस्कार और द्वितीय चरफल पर विचार करेंगे।

उपर्युक्त चरफल से संयुक्त राश्यादि चन्द्र और राश्यादि स्पष्ट सूर्य का अन्तर सूर्यचन्द्रान्तरांश होगा जिसे तिथिकेन्द्रांश कहते हैं। इसकी ज्या को परमतिथिफल अथवा द्वितीय चरफल से गुणा कर देंगे। यदि ज्यानयन भास्करीय प्रकार से किया गया हो तो त्रिज्या से भाग देंगे। लब्धी इष्ट तिथि संस्कार फल होगा।

स्पष्ट राश्यादि चन्द्र = चं$_{१}$

स्पष्ट सूर्य = सू$_{१}$

परमतिथिफल = फ$'_{२}$

चन्द्रसूर्यान्तर = चं$_{१}$-सू$_{१}$ = के$'$ (तिथिकेन्द्र)

इष्टतिथिफल = इ फ$'_{२}$

ज्या२के$'$•फ$'_{२}$ = इ फ$'_{२}$ ३

अथवा

ज्या२ (चं$_{१}$-सू$_{१}$)•फ$'_{२}$ = इ. फ$'_{२}$

यदि भास्करीय सारणी से इष्टतिथिफल का प्रमाण प्राप्त करना हो तो निम्न सूत्र से प्राप्त करेंगे।

[(ज्या$_{न}$ - ज्या२के$'$)•फलान्तर ÷ ज्यान्तर] + फ$_{२}$ = इ.फ$'_{२}$

यदि तिथिकेन्द्रांश = १२°, परमतिथिफल ३५.७५ भास्करीय द्वितीय चरफल = ३४ कला हो तो इष्ट तिथि फल निम्नवत होगा।

ज्या २ (१२°) x ३४]
ज्या २ (१२°) x ३५.७५] ३क

ज्या (२ x १२) = ज्या २४° = ०.४०६७३६६४३

अतः

०.४०६७३६६४३ x ३४ (भास्करीय)..........................क

०.४०६७३६६४३ x ३५.७५ (आधुनिक)....................ख

= १३.८२९०४६..................क

= १४.५४०८३५..................ख

दोनों संस्कार फलों में ०.७११७८९ (कला दशमलव में) अर्थात् ४२ विकला का अन्तर है। पूर्व में च्युति चरफलान्तर १८ विकला है। इन दोनों अन्तरों का योग एक कला होता है और अन्तर २४ विकला प्राप्त होता है जो कि चाक्षुषीय प्रेक्षण दृष्ट्या नगण्य है।

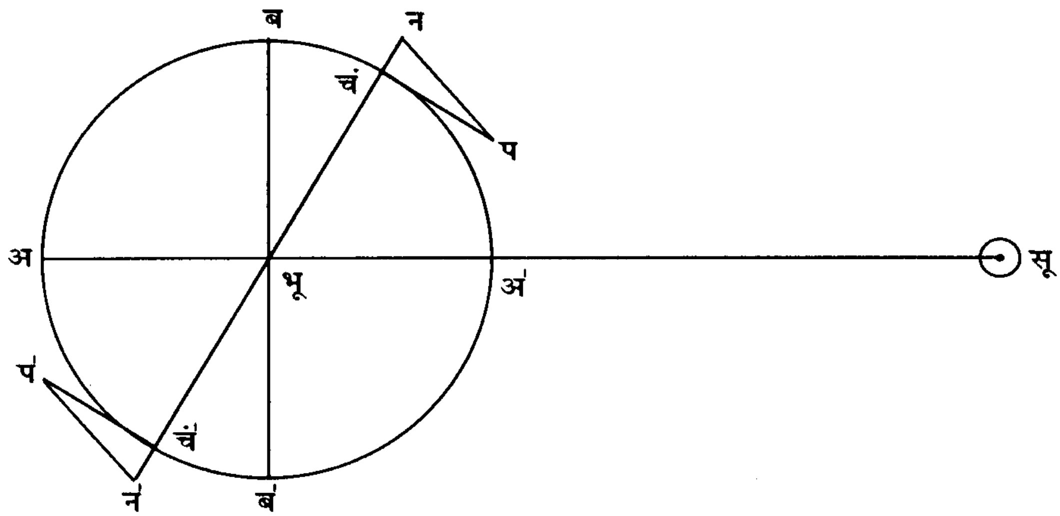
प्रति एक-एक अंशों की च्युतिफल, तिथिफल और प्रथम चरफल तथा द्वितीय चरफल की तूलनात्मक एकीकृत सारणी :

अंश	ज्या	च्युतिफल	भास्करीय चरफल प्र.	तिथिफल	भास्करीय चरफल द्वि.
१	.०१७४५२४०६	७७.९६	८१.६८	३७.४४	३५.६०
२	.०३४८९९४९६	१५५.९०	१६३.३३	७७.८६	७१.२०
३	.०५२३३५९५६	२३३.७८	२४४.९३	११२.२६	१०६.७७
४	.०६९७५६४७३	३११.६०	३२६.४६	१४९.६३	१४२.३०
५	.०८७१५५७४२	३८९.३२	४०७.८९	१८६.९५	१७७.८०
६	.१०४५२८४६३	४६६.९३	४८९.१९	२२४.१४	२१३.२४
७	.१२१८६९३४३	५४४.४०	५७०.३५	२६१.४१	२४८.६१
८	.१३९१७३१०१	६२१.७०	६५१.३३	२९८.५३	२८३.९१
९	.१५६४३४४६५	६९८.८०	७३२.११	३३५.५५	३१९.१३
१०	.१७३६४८१७७	७७५.६८	८१२.६७	३७२.४७	३५४.२४
११	.१९०८०८९९५	८५२.३४	८९२.९९	४०९.२८	३८९.२५
१२	.२०७९११६९०	९२८.७४	९७३.०३	४४५.९७	४२४.१४
१३	.२२४९५१०५४	१००४.८६	१०५२.७७	४८२.५२	४५८.९०
१४	.२४१९२२८९५	१०८०.६६	११३२.१९	५१८.९२	४९३.५२
१५	.२५८८१९०४५	११५६.१४	१२११.२७	५५५.१६	५२७.९९
१६	.२७५६३७३५५	१२३१.२७	१२८९.९८	५९१.२४	५६२.३०
१७	.२९२३७१७०४	१३०६.०२	१३६८.३०	६२७.१४	५९६.४४
१८	.३०९०१६९९४	१३८०.३८	१४४६.२०	६६२.८४	६३०.३९
१९	.३२५५६८१५४	१४५४.३१	१५२३.६६	६९८.३४	६६४.१६
२०	.३४२०२०१४३	१५२७.८०	१६००.६५	७३३.६३	६९७.७२
२१	.३५८३६७९४९	१६००.८३	१६७७.१६	७६८.७०	७३१.०७
२२	.३७४६०६५९३	१६७३.३७	१७५३.१६	८०३.५३	७६४.१९
२३	.३९०७३११२८	१७४५.४०	१८२८.६२	८३८.१२	७९७.०९
२४	.४०६७३६६४३	१८१६.९०	१९०३.५३	८७२.४५	८२९.७४
२५	.४२२६१८२६१	१८८७.८४	१९७७.८५	९०६.५२	८६२.१४
२६	.४३८३७११४६	१९५८.२०	२०५१.५८	९४०.३१	८९४.२७
२७	.४५३९९०४९९	२०२७.९७	२१२४.६७	९७३.८१	९२६.१४
२८	.४६९४७१५६२	२०९७.१३	२१९७.१३	१००७.०२	९५७.७२

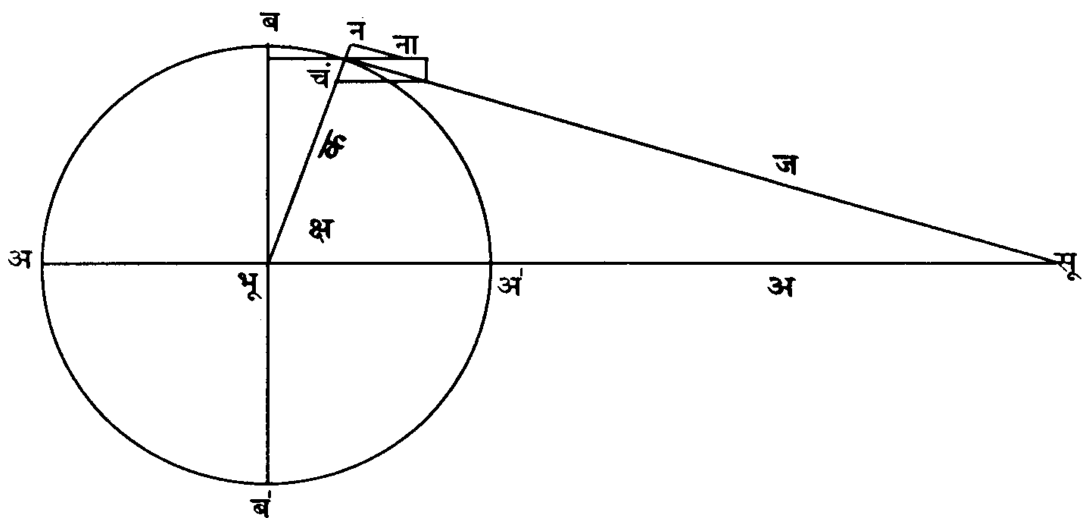
२९	.४८४८०९६२०	२१६५.६४	२२६८.११	१०३९.९२	९८९.०१
३०	.५०००००००००	२२३३.५०	२३४०.००	१०७२.५०	१०२०.००
३१	.५१५०३८०७४	२३००.६७	२४१०.३८	११०४.७६	१०५०.६८
३२	.५२९९१९२६४	२३६७.१५	२४८०.०२	११३६.६८	१०८१.०३
३३	.५४४६३९०३५	२४३२.९०	२५४८.९१	११६८.२५	१११११.०६
३४	.५५९१९२९०३	२४९७.९१	२६१७.०२	११९९.४७	११४०.७५
३५	.५७३५७६४३६	२५६२.१६	२६८४.३४	१२३०.३२	११७०.०९
३६	.५८७७८५२५२	२६२५.६४	२७५०.८३	१२६०.८०	११९९.०८
३७	.६०१८१५०२३	२६८८.३१	२८१६.५०	१२९०.९०	१२२७.७०
३८	.६१५६६१४५७	२७५०.१६	२८८१.३०	१३२०.६०	१२५५.९५
३९	.६२९३२०३९१	२८११.१७	२९४५.२२	१३४९.९०	१२८३.८१
४०	६४२७८७६०९	२८७१.३३	३००८.२५	१३७८.७८	१३११.२९
४१	.६५६०५९०२९	२९३०.६१	३०७०.३६	१४०७.२५	१३३८.३६
४२	.६६९१३०६०६	२९८९.०१	३१३१.५३	१४३५.२८	१३६५.०३
४३	.६८१९९८३६	३०४६.४९	३१९१.७५	१४६२.८९	१३९१.२८
४४	.६९४६५८३७०	३१०३.०४	३२५१.००	१४९०.०४	१४१७.१०
४५	.७०७१०६७८१	३१५८.६४	३३०९.२६	१५१६.७४	१४४२.५०
४६	.७१९३३९८००	३२१३.३०	३३६६.५१	१५४२.९८	१४६७.४५
४७	.७३१३५३७०१	३२६६.९६	३४२२.७४	१५६८.७५	१४९१.९६
४८	.७४३१४४८२५	३३१९.६३	३४७७.९२	१५९४.०४	१५१६.०२
४९	.७५४७०९५८०	३३७१.२९	३५३२.०४	१६१८.८५	१५३९.६१
५०	.७६६०४४४३	३४२१.९२	३५८५.०९	१६४३.१६	१५६२.७३
५१	.७७७१४५९६१	३४७१.५१	३६३७.०४	१६६६.९८	१५८५.३८
५२	.७८८०१०७५३	३५२०.०४	३६८७.८९	१६९०.२८	१६०७.५४
५३	.७९८६३५५१०	३५६७.५०	३७३७.६१	१७१३.०७	१६२९.२२
५४	.८०९०१६९९४	३६१३.८८	३७८६.२०	१७३५.३४	१६५०.४०
५५	.८१९१५२०४४	३६५९.१५	३८३३.६३	१७५७.०८	१६७१.०७
५६	.८२९०३७५७२	३७०३.३१	३८७९.९०	१७७८.२८	१६८१.२४
५७	.८३८६७०५६७	३७४६.३४	३९२४.९८	१७९८.९५	१७१०.९०
५८	.८४८०४८०९६	३७८८.२९	३९६८.८६	१८१९.०६	१७३०.०२
५९	.८५७१६७३००	३८२८.९७	४०११.५४	१८३८.६२	१७४८.६२

६०	.८६६०२५४०३	३८६८.५३	४०५२.९९	१८५७.६२	१७६६.७०
६१	.८७४६१९७०७	३९०६.९३	४०९३.२२	१८७६.०६	१७८४.२२
६२	.८८२९४७५९२	३९४४.१३	४१३२.२०	१८९३.९२	१८०१.२१
६३	.८९१००६५२४	३९८०.१३	४१६९.९१	१९११.२१	१८१७.६५
६४	.८९८७९४०४६	४०१४.९१	४२०६.३६	१९२७.९१	१८३३.५४
६५	.९०६३०७७८७	४०४८.४८	४२४१.५२	१९४४.०३	१८४८.८७
६६	.९१३५४५४५७	४०८०.८१	४२७५.४०	१९५९.५५	१८६३.६३
६७	.९२०५०४८५३	४१११.८९	४३०७.९६	१९७४.४८	१८७७.८३
६८	.९२७१८३८५४	४१४१.७३	४३३९.२२	१९८८.८१	१८९१.४५
६९	.९३३५८०४२६	४१७०.३०	४३६९.१६	२००२.५३	१९०४.५०
७०	.९३९६९२६२	४१९७.६१	४३९७.७६	२०१५.६४	१९१६.९७
७१	.९४५५१८५७५	४२२३.६३	४४२५.०३	२०२८.१४	१९२८.८६
७२	.९५१०५६५१६	४२४८.३७	४४५०.९४	२०४०.०२	१९४०.१५
७३	.९५६३०४७५६	४२७१.८१	४४७५.५१	२०५१.२७	१९५०.८६
७४	.९६१२६१६९५	४२९३.९५	४४९८.७०	२०६१.९१	१९६०.९७
७५	.९६५९२५८२६	४३१४.८०	४५२०.५३	२०७१.९१	१९७०.५०
७६	.९७०२९५७२६	४३३४.३१	४५४०.९८	२०८१.२८	१९७९.४०
७७	.९७४३७००६४	४३५२.५१	४५६०.०५	२०९०.०२	१९८७.७१
७८	.९७८१४७६००	४३६९.४०	४५७७.७३	२०९८.१३	१९९५.४२
७९	.९८१६२७१८३	४३८४.९३	४५९४.०१	२१०५.५८	२००२.५२
८०	.९८४८०७७५३	४३९९.१४	४६०८.९०	२११२.४१	२००९.०१
८१	.९८७६८८३४०	४४१२.००	४६२२.३८	२११८.५९	२०१४.८८
८२	.९९०२६८०६८	४४२३.५३	४६३४.४५	२१२४.१२	२०२०.१५
८३	.९९२५४६१५१	४४३३.७०	४६४५.११	२१२९.०१	२०२४.८०
८४	.९९४५२१८९५	४४४२.५३	४६५४.३६	२१३३.२५	२०२८.८२
८५	.९९६१९४६९८	४४५०.००	४६६२.१९	२१३६.८४	२०३२.२४
८६	.९९७५६४०५०	४४५६.१२	४६६८.६०	२१३९.७७	२०३५.०३
८७	.९९८६२९५३४	४४६०.८८	४६७३.५९	२१४२.०६	२०३७.२०
८८	.९९९३९०८२७	४४६४.२८	४६७७.१५	२१४३.६९	२०३८.७६
८९	.९९९८४७६९५	४४६६.३२	४६७९.२९	२१४४.६७	२०३९.६९
९०	१.००००००००	४४६७.००	४६८०.००	२१४५.००	२०४०.००

आकृति–१



आकृति–२



चन्द्रविषमता का गुरुत्वाकर्षणिक विवरण

उक्त सन्दर्भ में भास्कराचार्य ने स्पष्टरूप से दो कारणों को विवेचित किया है।

१. सूर्य के सम्यक् आकर्षणवशात् चन्द्र की सामान्य स्वाभाविक गति में विषमता उत्पन्न होती है।

२. पदार्थों में आन्तरिक उदासीनता (Inertia) होती है।

उपर्युक्त कारणों के साथ-साथ चन्द्र वैषम्य का सम्पूर्ण प्रमाण भी भास्कराचार्य ने इस पुस्तक में बतलाया है जिसकी उपलब्धता चन्द्रमा के प्रेक्षण द्वारा उन्होंने की।

आधुनिक (पाश्चात्य) च्युति तिथिफल संयुक्त परम विषमता का मूल गणितीय आधार कणगतिकी के व्यवधान बल सिद्धांत पर आश्रित है जो कि सूर्य के आकर्षण से ही सम्बद्ध है। नीचे संक्षिप्त विवरण चित्रानुसार दिया गया है।

आकृति १ तथा २ में उपर तथा नीचे की ओर दो त्रिभुज निर्मित हैं। उपर के त्रिभुज में त्रिभुज के दो संयोग बिन्दु "चं, न" अक्षरों से तथा त्रिभुजाग्र बिन्दु "प" अक्षर से निर्दिष्ट है। ठीक इसी प्रकार नीचे के त्रिभुज में चं', नं', पं' अक्षरों से स्थान निर्देशन किया गया है। ब, भू, बं' रेखा अ, भू, अं' रेखा पर लम्ब है। भू सू सूर्यदूरत्व है। भू चं तथा भू चं' चन्द्र दूरत्व है। अब भू बिन्दु के निकट भू सू रेखा पर सू बिन्दु की ओर भूं' बिन्दुकल्पित करेंगे। भू बिन्दु पृथ्वी, सू बिन्दु सूर्य तथा चं, चं' बिन्दु चन्द्र का द्योतक है। भू बिन्दु के चारों ओर, चन्द्र बिन्दु चं. ब अं' बं' अ मार्ग पर परिक्रमित होता है। पृथ्वी सह चन्द्र को सूर्य अपने आकर्षण शक्ति द्वारा संपीड़ित करता है। ऐसी स्थिति में पृथ्वी तथा चन्द्र, सूर्य बिन्दु सू से समान दूरी पर रहते हैं और सूर्याकर्षण की दिशा समान्तर रहती है, तो सूर्यकृत आकर्षण से चन्द्र एवं पृथ्वीगोल की सापेक्ष स्थिति में कोई भी अन्तर नहीं होगा। यदि चन्द्रमा, पृथ्वी की आपेक्षा सूर्य के निकटतर हो अर्थात भू सू > सू चं हो तो सूर्य का भूगोल की अपेक्षा चन्द्रगोल पर आकर्षण अधिक होगा। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि आकर्षण प्रमाण दूरत्वापेक्षी होता है। इस आकर्षण प्रमाण का पृथक्करण करने पर चं न तथा न पं' तुल्य व्यवधान प्रमाण प्राप्त होता है। इनमें से चं. न त्रैज्यिकबल (Radial Force) तथा न, प स्पार्शिकबल (Tangential Force) है। स्पार्शिक बल से ब भू अं' संज्ञक पद में चं, चन्द्र बिन्दु ब बिन्दु से अ बिन्दु तक सूर्य के द्वारा आगे की ओर आकृष्ट होता है अतः चन्द्र की गति में वृद्धि होती है। अं' भू बं' संज्ञक पद में अं' बिन्दु से बं' बिन्दु तक सूर्य के द्वारा पीछे की ओर आकृष्ट होता है। अतः चन्द्र की गति में ह्रास होता है। इसी क्रम से अतिरिक्त पदों में, अर्थात् अ, भू, बं' और अ, भू, ब संज्ञक पदों में चन्द्रमा की अपेक्षा पृथ्वी पर आकर्षण अधिक होता है अतः चं' बिन्दुस्थ चन्द्रगोल नं' पं' रेखा तुल्य बल के द्वारा विपरीत दिशा में सम्यक्तया आकृष्ट होता है। सू बिन्दुस्थ सूर्य के द्वारा आकर्षित होकर भू बिन्दुस्थ पृथ्वी भू बिन्दु से भूं' बिन्दु पर भू सू रेखा में सूर्य की ओर च्युत होती है जिससे ∠ सू भूं' चं > ∠ सू भू चं होगा। अर्थात् गति वृद्धि होती है।

उपर्युक्त त्रैज्यिक तथा स्पार्शिकबलों का संयुक्तस्वरूपमात्र व्यवधानबल है। इन तीनों का समीरकणात्मक स्वरूप निम्नवत है।

चित्र संख्या १ तथा २ में चं न और न पं' व्यवधानबल, चं न त्रैज्यिकबल, न ना अथवा न प स्पार्शिकबल है।

अतः

अ = सूर्यदूरत्व। सू = पिण्डमात्रा। ज = सूर्य से चन्द्रदूरत्व।

१. चं न = अ सू ($१/ज^३$ - $१/अ^३$) Disturbing force

२. चं न = अ सू ($१/ज^३$ - $१/अ^३$) कोज्याक्ष

३. न नां' = अ सू ($१/ज^३$ - $१/अ^३$) ज्याक्ष

यहाँ पर ∠ सू भू चं = ∠ ना चं न = ∠ क्ष है

अभीष्ट स्थानीय त्रैज्यिक तथा स्पार्शिक बल समीकरण।

क = भू से चन्द्र दूरत्व। अ = सूर्य दूरत्व। सू = सूर्य पिण्डमात्रा।

त्रैज्यिक बल = क सू•(३कोज्या^{2}क्ष - १) ÷ अ^{3}

स्पार्शिक बल = ३क सू• ज्या२क्ष ÷ २अ^{3}

उक्त समीकरण एक में,

ज^{3} = अ^{3} ± ३अ^{2}क कोज्याक्ष होता है।

अतः

ज^{3}-अ^{3} = ± ३अ^{2}क कोज्याक्ष होगा।

चूँकि

(अ^{3} - ज^{3}) कोज्याक्ष = कअ^{2}

अतः

± ३अ^{2}क कोज्या^{2}क्ष = कअ^{2}

तथा

± ३कोज्या^{2}क्ष = १

और

कोज्याक्ष = $\sqrt{\frac{१}{३}}$ = ५४°/४४′

अर्थात् विषम पदान्त के निकट ३५ अंश १६ कला यह प्रमाण सिद्ध हुआ। विषम पदान्त से आगे और पीछे ३५.२६६६ अंशतक चन्द्रमा पर पृथ्वी का आकर्षण बढ़ता है और समपदान्त से आगे और पीछे ५४.७३३३ अंशतक चन्द्रमा पर सूर्याकर्षण अधिक होने से पृथ्वी का आकर्षण न्यून होता है।

चन्द्रकक्षा केन्द्र से भूकेन्द्र का रेखीय अन्तर परममन्दफल है। जब सूर्याकर्षणवशात् भू बिन्दु भू′ बिन्दु पर च्युत होता है, तब परममन्दफल में भू भू′ तुल्य रेखीय प्रमाण के कला-विकलात्मक प्रमाणतुल्य ह्रासवृद्धि होती है। यही वृद्धि च्युतिफल (Evection) है और जो व्यवधानबल है, वह पाक्षिक या तिथिफल (Veriation) है।

***